भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सचित्र मामले

manupatra®

AWAAZ

JUSTICE adda

ई-बुक पहल के बारे में

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने समय समय पर संवैधानिक कानून के विषय पर , पर्यावरण कानून, श्रम सुधार, लिंग और लैंगिता, सार्वजनिक कर्तव्य के मुद्दों, बाल अधिकारों और कई अन्य क्षेत्रों में कई ऐतिहासिक निर्णय दिये हैं । इन मामलों में निर्णयों ने सार्वजनिक राय और चर्चा को प्रभावित करके बदला भी है। वकीलों, सुधारकों और कार्यकर्ताओं की पीढ़ियों को प्रेरित किया है और हर समुदाय के व्यक्ति के लिए न्याय तक पहुँच में योगदान दिया है।

इस पहल का उद्देश्य उन निर्णयों के सारांश का अनुवाद और उत्पादन देश के सभी लोगों के लिए आसान भाषा में करना है। यह वो मुद्दे हैं जो नागरिकों के रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों का समर्थन और व्याख्या करते हैं जिसमें देश के आम आदमी की सामान्य न्याय की समस्याओं के समाधान की चर्चा है ।

सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक मामलों के इस संग्रह की अवधारणा और प्रकाशन की शुरुआत 2018 में मनुपात्रा और जस्टिस अड्डा द्वारा अंग्रेजी भाषा में किया गया था। न्याय तक पहुंच को और सक्षम बनाने की दिशा में एक कदम के रूप में, इसे आवाज पहल के सहयोग से पांच और भाषाओं, हिंदी, बंगाली, उर्दू, मराठी और मलयालम के तहत पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है। हम आशा करते हैं कि आने वाले समय में यह प्रोजेक्ट अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी पहुंच बढ़ाएगा।

यह संग्रह सरल भाषा और चित्रों की एक श्रृंखला के माध्यम से देश में हुए प्रमुख मुद्दों पर प्रकाश डालता है। इस पहल को एक उम्मीद के साथ भी प्रदर्शित कर रहे है कि न्यायालय की भाषा को ऐसी भाषा में बदला जा सकता है जो नागरिकों के लिए समझने योग्य और उपयोगी हो सकती है जो अपनी भाषाओं में अपने अधिकारों और अधिकारों के बारे में जानने में रुचि रखते हैं।

संपादन, लेखन और चित्रण दल

सर्वोच्च न्यायल के मामलों की इस श्रृंखला को सिद्धार्थ पीटर डी सूजा, शेफाली कॉर्डेरो, रिया लोपेज, अपर्णा मेहरोत्रा और वत्सला पांडे द्वारा लिखा, संपादित और सचित्र किया गया है। हम क्षेत्रीय भाषाओं में डिजाइन समर्थन में हमारी सहायता करने के लिए रचित शर्मा को धन्यवाद देना चाहते हैं।

अनुवाद दल

हिन्दी भाषा में इस संग्रह का नेतृत्व रोहित शर्मा ने दो बहुत ही महत्वपूर्ण साथी डेज़ी छेत्री और वीरेंद्र के साथ किया। यह कार्य इन लोगों के बिना बिलकुल भी संभव नहीं था क्योंकि ये लोग इस पहल की मुख्य ताक़त थे। हम काव्या नायक को उनके सहयोग के लिए भी धन्यवाद कहना चाहते हैं। हम इस हिंदी संग्रह में समीक्षा में राजू राम द्वारा सहायता करने के लिए भी धन्यवाद देना चाहते हैं।

जस्टिस अड्डा के बारे में

जस्टिस अड्डा एक कानूनी डिजाइन हेतु तैयार हुआ सामाजिक पहल है जो विश्वविद्यालयों, कानूनी प्रकाशकों, मानवाधिकार प्रचारकों और कानूनी तकनीकी कंपनियों के साथ काम करता है ताकि लोगों को सामग्री, डिजाइन और प्रौद्योगिकी समाधान प्रदान करके कानून को समझने और उपयोग करने के लिए सशक्त बनाया जा सके।

मनुपात्रा के बारे में

मनुपात्रा एक कानूनी तकनीक कंपनी है जो वर्ष 2000 से कानून और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नये नये बदलाव लाती जा रही है। इसके साथ साथ मनुपात्रा इस प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी उत्पादों को डिजाइन और विकसित कर रही है जो वकीलों, कानूनी फर्मों और कानूनी विभागों के संचालन को सुव्यवस्थित करते हैं। मनुपात्रा भारत का अग्रणी ऑनलाइन कानूनी अनुसंधान मंच है जिसने एक व्यापक कानूनी सूचना एग्रीगेटर तक पहुंच के साथ-साथ सहज और बेहतर कानूनी विश्लेषण उपकरण प्रदान करके कानूनी अनुसंधान को बेहतर बनाया है।

आवाज पहल के बारे में

आवाज़, रोहित शर्मा द्वारा शुरू करी हुई एक पहल है जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कानूनों और विधानों को नागरिकों के लिए सुलभ बनाना है। इसका उद्देश्य क्षेत्रीय भाषाओं में सामाजिक-कानूनी विमर्श का लोकतंत्रीकरण करना और कानूनी साक्षरता में नागरिकों और न्याय प्रणाली के बीच के अंतर को कम करना है। हम स्वर्गीय प्रोफेसर शमनाद बशीर को भी धन्यवाद देना चाहते हैं कि उन्होंने हमें कानूनी शिक्षा तक पहुंच में सुधार देखने का और बदलाव करने का रास्ता दिखाया।

अभिस्वीकृति (एकनॉलेजमेंट)

हम विशेष रूप से प्रियंका, उर्वशी अग्रवाल और पूरी मनुपात्रा टीम को उनके अटूट समर्थन के लिए धन्यवाद देना चाहते हैं। इसके साथ साथ हम जस्टिस अड्डा टीम से नाओमी जोस, लॉक्टोपस टीम द्वारा आउटरीच में समर्थन के लिए तनुज कालिया और आवाज पहल का शुरुआत से ही समर्थन करने के लिए यूथ की आवाज टीम के अंशुल तिवारी को भी धन्यवाद देना चाहते हैं।

सुझाव और फीडबैक

यह संग्रह क्षेत्रीय भाषाओं में कानूनी ज्ञान को अधिक सुलभ बनाने की दिशा में प्रारंभिक कदमों में से एक है। हम समझते हैं कि कुछ उदाहरणों में, जटिल कानूनी शब्दावली अभी भी क्षेत्रीय भाषाओं में इस्तेमाल हुई है चूँकि वह शब्द अभी भी आम नागरिकों के लिए उस भाषा में सुलभ नहीं है। यदि आपको उपयोग की गई भाषा के बारे में कोई त्रुटि या सुझाव होते हैं या आप किसी अन्य भाषा के लिए काम करना चाहते हैं, तो कृपया awaaz@youthkiawaaz.com और thejusticeadda@gmail.com पर हमसे संपर्क करने के लिए स्वतंत्र महसूस करें। हम इस संग्रह के आगामी संस्करणों में आपकी प्रतिक्रिया को शामिल करने का प्रयास करेंगे।

अनुक्रमाणिका

1. ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य..... 6
2. आई.सी. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य..... 10
3. एच.एच. महाराजाधिराज माधव राव बनाम भारत संघ..... 14
4. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य..... 18
5. एडिगा अन्नमा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य..... 22
6. श्रीमती इंदिरा नेहरु गांधी बनाम श्री राज नारायण और अन्य..... 26
7. मेनका गांधी बनाम भारत संघ..... 30
8. नंदिनी सत्पथी बनाम पी.एल.दानी..... 34
9. हुसैनारा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य..... 37
10. सुनिल बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन..... 41
11. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ..... 45
12. बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य..... 49
13. एस.पी.गुप्ता बनाम भारत संघ..... 53
14. बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ..... 56
15. शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य..... 60
16. ओल्गा टेलिस और अन्य बनाम बॉम्बे म्युनिसीपल कॉर्पोरेशन..... 64
17. मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम और अन्य..... 68
18. रूरल लिटिगेशन एंड एंटाइटलमेंट केंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य..... 71
19. मैरी रॉय बनाम केरल राज्य..... 74
20. इंद्रा साहनी और अन्य बनाम भारत संघ..... 78
21. उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य..... 82
22. एस.आर.बोम्मई बनाम भारत संघ..... 85
23. सरला मुद्गल बनाम भारत संघ..... 89
24. श्री बोधिसत्व गौतम बनाम मिस सुभ्रा चक्रवर्ती..... 92
25. डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य..... 96
26. एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ..... 101
27. विशाखा बनाम राजस्थान राज्य..... 105
28. समता बनाम आंध्र प्रदेश राज्य..... 108
29. विनीत नारायण बनाम भारत संघ..... 110
30. अध्यक्ष रेल्वे बोर्ड बनाम चंद्रिमा दास..... 114

अनुक्रमाणिका

31. नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ और अन्य..... 118
32. एम. सी. मेहता बनाम कमलनाथ..... 125
33. भारत संघ बनाम असोसिएशन फॉर डेमोक्रॅटिक रिफॉर्म्स..... 130
34. भूतपूर्व कॅप्टन हरीश उप्पल बनाम भारतीय संघ और अन्य..... 133
35. पीपलस् यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीस बनाम भारत संघ और अन्य..... 137
36. रामेश्वर प्रसाद और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य..... 141
37. स्वामी श्रद्धानंद बनाम महाराष्ट्र राज्य..... 145
38. सेल्वी बनाम कर्नाटक राज्य..... 147
39. अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ..... 150
40. सोसाइटी फॉर अनएडिड प्राइवेट स्कूल्ज ऑफ़ राजस्थान बनाम भारत संघ..... 154
41. नोवार्टिस ए.जी. बनाम भारत संघ और अन्य..... 157
42. लिली थॉमस बनाम भारत संघ..... 159
43. महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम भारतीय होटल और रेस्टोरेंट संघ..... 163
44. पीपलस् यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीस और अन्य बनाम भारत संघ..... 166
45. अभय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य..... 168
46. शत्रुगन चौहान और अन्य बनाम भारत संघ..... 170
47. राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ और अन्य..... 173
48. कॉमन कॉज बनाम भारत संघ..... 176
49. श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ..... 180
50. सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स ऑन रेकॉर्ड बनाम भारत संघ..... 185

manupatra®

JUSTICE adda

ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य

मनु/एस सी/0012/1950

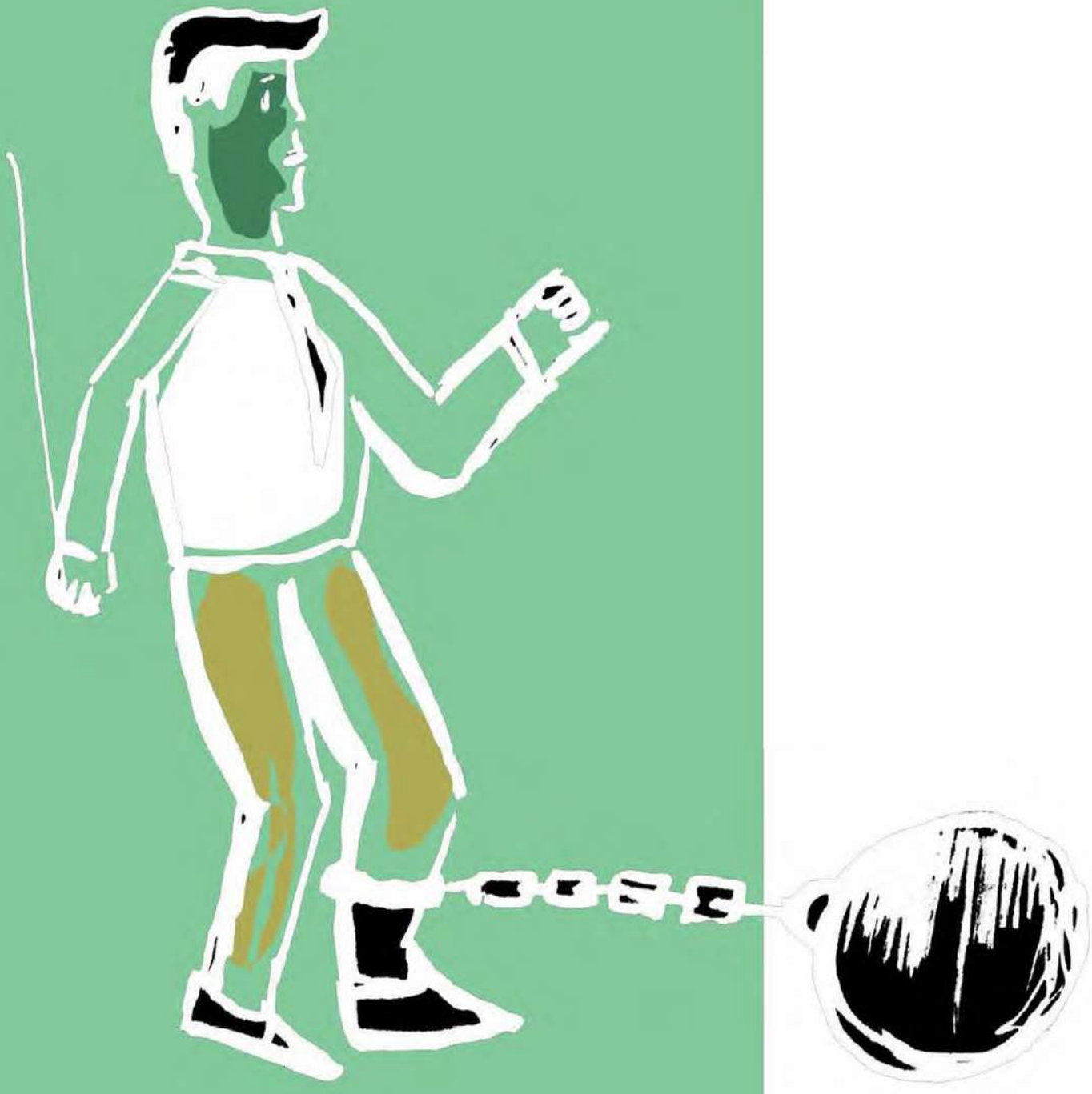

तथ्य

- याचिकाकर्ता को निवारक निरोध अधिनियम 1950 (Preventive Detention Act, 1950) के तहत हिरासत में लिया गया था।

- इस अधिनियम के तहत संदेह के आधार पर संभावित अपराध के होने से पहले ही उसे रोकने की कार्यवाही की जाती हैं।

- याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुछेद 32 के तहत अपनी रिहाई के लिए आवेदन इस आधार पर किया कि उक्त अधिनियम ने संविधान के अनुछेद 13, 19, 21 और 22 के प्रावधानों का उल्लंघन किया था, नतीजतन यह संविधान की शक्तियों से परे (Ultra Vires) था और उसकी हिरासत गैर-क़ानूनी थी।

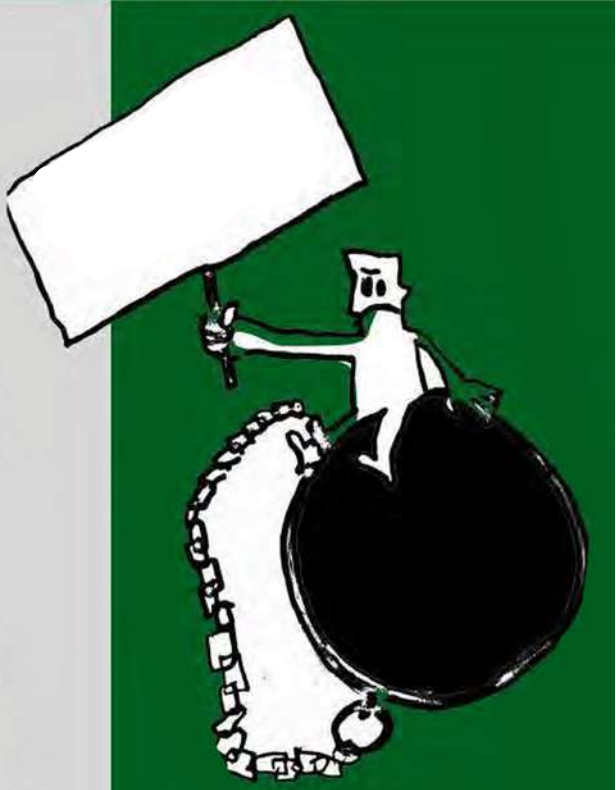

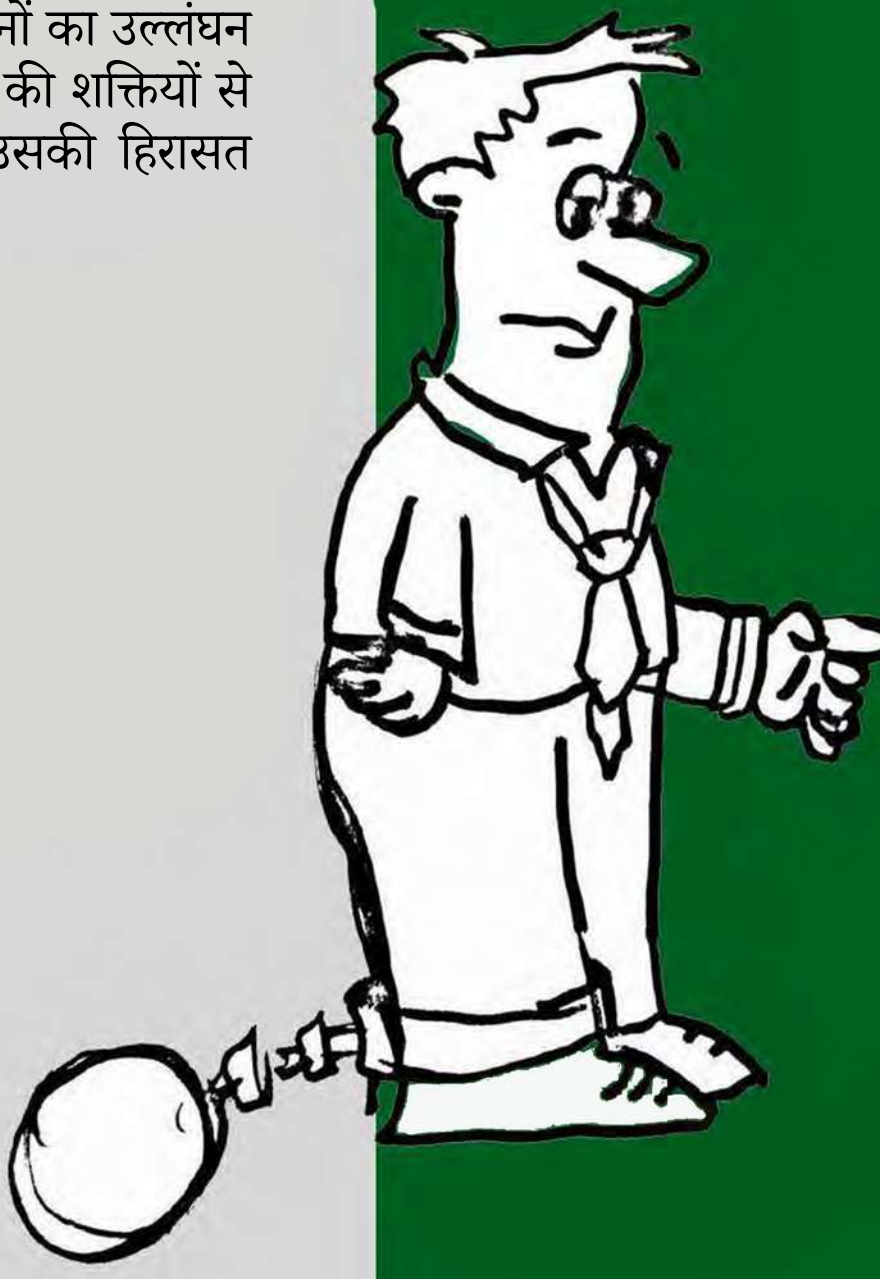

काननी प्रश्न

क्या निवारक निरोध अधिनियम निम्नलिखित अनुच्छेदों में दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है?

- 13 (मौलिक अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां)
- 19 (स्वतंत्रता का अधिकार)
- 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण)
- 22 (गिरफ़्तारी और हिरासत के खिलाफ संरक्षण)

निर्णय

- सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि निवारक निरोध अधिनियम, संविधान के अनुच्छेद 19 के प्रावधानों के तहत बंदी को दिए गए स्वतंत्रता के अधिकार हनन नहीं करता है।

- अनुच्छेद 19 को अनुच्छेद 21 से अलग बताते हुए, न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 21 द्वारा दिया गया संरक्षण सामान्य प्रकृति का है। अनुच्छेद 19 विशेष रूप से केवल भारतीय नागरिकों को अधिकार देता है, जबकि अनुच्छेद 21 सभी व्यक्तियों पर लागू होता है। अनुच्छेद 21 की पुनर्व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 21 में "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया(Procedure established by law)" शब्द "विधि की सम्यक प्रक्रिया(Due Process)" से अलग हैं, जो कि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में उल्लेख किया गया है।

न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 22 संसद को निवारक निरोध के विषय पर कानून बनाने का अधिकार देता है। उसी अनुच्छेद के खंड (4) से (7) के तहत निवारक निरोध से संबंधित कानूनों पर कुछ सीमाएं लगाईं हुई है। किसी भी विधिवत रूप से बनाये गए कानून के तहत निर्धारित किसी भी प्रक्रिया को तब तक शून्य (Void) नहीं ठहराया जा सकता है जब तक यह अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) से (7) का हनन नहीं करता है।

निष्कर्ष में, न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 19, 21 और 22 पारस्परिक रूप से अलग है। यदि व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले कानून पर अनुच्छेद 21 लागू होता है, ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 19 को लागू नहीं किया जा सकता है।

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले कानून को केवल इसलिए असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता है कि यह विधि की सम्यक प्रक्रिया का पालन नहीं करता है या उस कानून में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों (Principles of Natural Justice) का अभाव है।

इसका मतलब यह हुआ कि अनुच्छेद 21, सक्षम विधायी कार्रवाही के खिलाफ कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करता है।

आई. सी. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य

मनु/एस सी/0029/1967

तथ्य

गोलकनाथ परिवार के पास 500 एकड़ खेती की जमीन थी। पंजाब राज्य सरकार का कहना था कि वे पंजाब भूमि स्वामित्व और सुरक्षा अधिनियम, 1953 (Punjab Security and Land Tenure Act, 1953) के अनुसार इस जमीन का केवल एक विशेष भाग ही रख सकते हैं। गोलकनाथ परिवार ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस आधार पर याचिका दायर की, कि अनुच्छेद 19 के तहत भूमि स्वामित्व पर यह सीमा, संपत्ति अर्जित करने और कोई भी पेशा करने के उनके मौलिक अधिकारों का हनन है। इसके अलावा उन्होंने यह भी दावा किया कि इस अधिनियम को संविधान संशोधन के माध्यम से 9वीं अनुसूची में डाल देना सरकार की शक्तियों से परे हैं।

काननी प्रश्न

- अनुच्छेद 13(2) मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाले कानूनों को प्रतिबंधित करता है । क्या कोई संविधान संशोधन, अनुच्छेद 13(2) के तहत "कानून" की परिभाषा में आ सकता है ?
- क्या मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है?

निर्णय

संविधान के अनुच्छेद 368 में केवल संशोधन प्रक्रिया का उल्लेख है। संसद को संशोधन करने की शक्ति अनुच्छेद 245, 246 और 248 के प्रावधानों से प्राप्त होती है जो इसे कानून बनाने की शक्ति देते हैं।

प्रत्येक संशोधन एक कानून है जिसे संविधान के अनुच्छेद 13(2) के तहत वैधता की परीक्षा पास करना चाहिए। जो संशोधन मौलिक अधिकारों को छीनता है या उल्लंघन करता है, वह शून्य (Void) है।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि “मौलिक अधिकार मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए आदिम काल से चले आ रहे हैं। ये वो अधिकार हैं जो एक आदमी को अपने जीवन को उस तरीके से तैयार करने में सक्षम बनाते हैं जिसे वह सबसे ज्यादा पसंद करता है। हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों में अल्पसंख्यकों, अछूतों और अन्य पिछड़े समुदायों के अधिकारों को भी शामिल किया गया था। मौलिक अधिकारों की घोषणा करने के बाद, हमारा संविधान कहता है कि संविधान के लागू होने से ठीक पहले भारत में लागू सभी कानून, जहां तक वे उक्त मौलिक अधिकारों के साथ असंगत हैं, असंगतता की उस सीमा तक शून्य हैं। संविधान राज्य को यह भी आदेश देता है कि वह किसी भी कानून को न बनाए जो उक्त अधिकारों को छीनता है या उनका उल्लंघन करता है और अगर ऐसे कानूनों को को बनाता है तो संविधान इन कानूनों को असंगति की सीमा तक शून्य घोषित करता है। जैसा कि हमने पहले कहा है, संविधान के अनुच्छेद 19 में निहित स्वतंत्रता पर एकमात्र प्रतिबन्ध, जनहित में एक वैध कानून द्वारा वैध सीमा के रूप में लगायी जाती हैं। इसलिए, मौलिक अधिकारों को हमारे संविधान में एक सर्वोच्च स्थान दिया गया है और संसद की पहुंच से परे रखा गया है।”

एच. एच. महाराजाधिराज माधव राव बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0050/1970

तथ्य

स्वतंत्रता से पहले भारत के लगभग 48 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र और लगभग 28 प्रतिशत आबादी रियासतों के अधीन आती थी। स्वतंत्रता के बाद इन राज्यों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र रहने का विकल्प दिया गया था। भारत के साथ जुड़ने के बदले में, राजाओं को राजभत्ता (Privy Purse) का भुगतान किया जाना था।

वर्ष 1970 में संसद में राजभत्ता, और उपाधियों की औपचारिक मान्यता समाप्त करने का प्रस्ताव लाया गया। यह लोकसभा में पारित हो गया, लेकिन राज्यसभा में एक वोट से पारित नहीं हो पाया। कुछ ही घंटों बाद भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने सभी शासकों की मान्यता रद्द करने वाले अध्यादेश (Ordinance) पर हस्ताक्षर किये। इस आदेश को भारत के सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई।

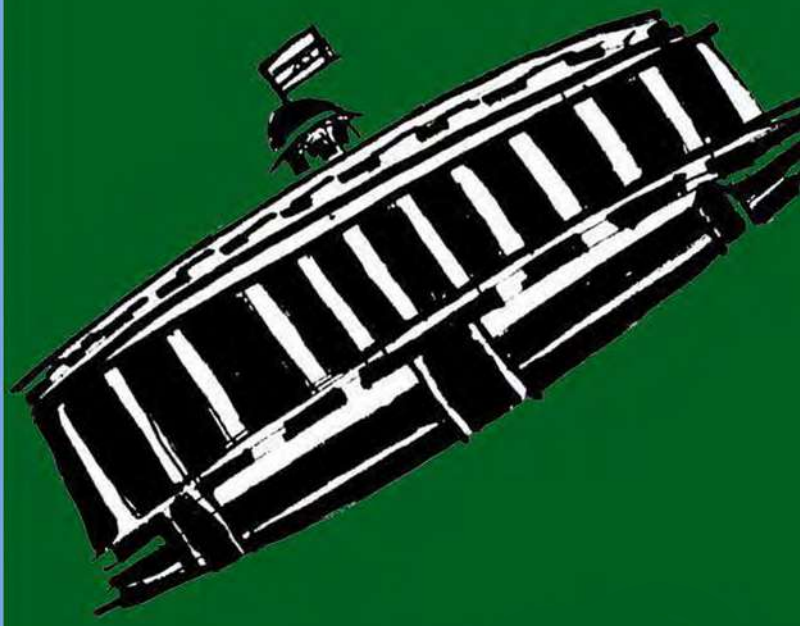

अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिकाएं दायर की गईं, जिसमें राष्ट्रपति के अध्यादेशों पर सवाल उठाए गए और सर्वोच्च न्यायालय से राजभत्ता को खत्म करने वाले आदेश को संविधान के खिलाफ और इस आदेश को अमान्य घोषित करने की मांग की गई।

याचिकाकर्ता का तर्क था कि राजभत्ता को समाप्त करना व्यक्ति की संपत्ति और उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करना है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि सरकार ने विश्वासाश्रित कर्तव्य (Fiduciary Duty) का उल्लंघन किया है।

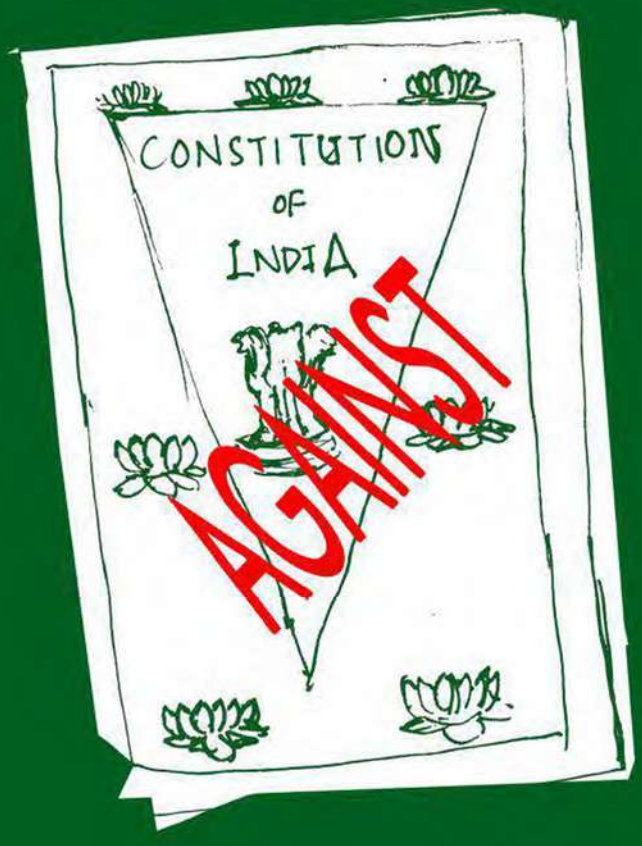

काननूी प्रश्न

- कानून का पहला प्रश्न राष्ट्रपति की कार्यवाही की वैधता पर था ?
- कानून का दूसरा प्रश्न यह था कि क्या सरकार ने अपनी संप्रभुता का प्रयोग करते हुए कार्य किया और क्या यह प्रयोग अनुच्छेद 363 के तहत न्यायालय को किसी भी प्रकार की राहत प्रदान करने में हस्तक्षेप करने से रोकता है?

निर्णय

सबसे पहले इस सवाल पर विचार करते हुए कि क्या न्यायालय के पास इस तरह के मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है और क्या सरकार सर्वोपरि शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्य कर सकती है, न्यायालय ने कहा कि, “भारत के किसी नागरिक के ख़िलाफ़ कोई शासकों की सर्वोपरिता नहीं हो सकती है। आज के शासक उतने शक्तिशाली नहीं हैं जितने वे पहले हुआ करते थे। वे अन्य नागरिकों की तरह ही भारत के नागरिक हैं, हालांकि उनके पास कुछ राजभत्ता जैसे विशेषाधिकार हैं जो अन्य नागरिकों को नहीं मिलते हैं। यह विशेषाधिकार इतिहास की एक दुर्घटना है और इसमें भारतीय संविधान सभा की सहमति भी शामिल है। इसलिए, उनके खिलाफ जो शक्ति प्रयोग की गई है, उसे संविधान और कानूनों के तहत उचित ठहराया जाना चाहिए, न कि उनके पक्ष में सर्वोच्चता के अस्पष्ट सिद्धांत को लागू करके।”

न्यायालय ने राष्ट्रपति के कृत्य पर टिप्पणी करते हुए कहा कि राष्ट्रपति ने संविधान के दायरे से बाहर जाकर काम किया है। जब तत्काल मामले में, संसद ने संविधान में संशोधन करने से इनकार कर दिया, तो कार्यपालिका की कार्रवाई (Executive Action) द्वारा राष्ट्रपति को इतनी शक्ति नहीं दी जा सकती है। शासकों की सुनवाई के बिना संविधान से अनुच्छेद 292, 362 और 366(22) को हटाने का प्रयास प्राकृतिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों का उल्लंघन था।

संविधान की सर्वोच्चता की बात करते हुए न्यायालय ने अंत में कहा कि ,

“संविधान से परे राष्ट्रपति के पास कोई राजनीतिक शक्ति नहीं है जिसका प्रयोग वह नागरिकों के हितो के ख़िलाफ़ कर सकते हैं। राष्ट्रपति की शक्तियाँ संविधान से उत्पन्न और संविधान से ही परिभाषित होती हैं।”

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य

मनु/एस सी/0445/1973

तथ्य

“एडनीर मठ” के प्रमुख स्वामी श्री एच. एच. श्री केशवानंद भारती ने केरल राज्य सरकार के दो भूमि सुधार अधिनियमों के तहत अपनी संपत्ति के प्रबंधन पर प्रतिबंध लगाने के प्रयासों को चुनौती दी। सरकारी हस्तक्षेप के बिना धार्मिक स्वामित्व वाली संपत्ति के प्रबंधन के अधिकार के संबंध में अनुच्छेद 26 के तहत एक याचिका दायर की गई थी

संविधान को 1971-72 में संशोधित किया गया था जिसके परिणामस्वरूप निम्नलिखित अधिनियमों को नौवीं अनुसूची में शामिल किया गया था:-

- केरल भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1969;
- केरल भूमि सुधार संशोधन) अधिनियम, 1971

तब याचिकाकर्ता ने संवैधानिक संशोधनों को चुनौती देने के लिए अतिरिक्त आधार और रिट याचिका में संशोधन का आग्रह किया।

काननी प्रश्न

संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा, अनुच्छेद 13 (2) के अलावा (जो राज्य को मौलिक अधिकारों को कम करने वाले कोई भी कानून बनाने से प्रतिबंधित करता है) संसद को प्रदान की गई संशोधन शक्ति की सीमा क्या है?

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मामले में निर्णय की समीक्षा की और 24वें, 25वें, 26वें और 29वें संशोधनों की वैधता पर विचार किया। इस मामले की सुनवाई 13 न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने की थी। बेहद नज़दीकी अंतर से विभाजित निर्णय में, 7-6 के बहुमत से, न्यायालय ने कहा कि हालांकि संसद के पास "व्यापक" शक्तियां हैं, लेकिन उसके पास संविधान के आधारिक संरचना (Basic Structure) को कम या नष्ट करने की शक्ति नहीं है।

- गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1643 (जिसमें कहा गया था कि संसद की संशोधन शक्तियां संविधान के किसी भी मौलिक अधिकार को कम नहीं कर सकती) को खारिज कर दिया गया था।

- संविधान (चौबीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1971 (संसद को संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति देना) को मान्य ठहराया गया।

- संशोधित हुआ अनुच्छेद 368 वैध था, लेकिन यह संसद को संविधान की आधारिक संरचना या ढांचे को बदलने की शक्ति प्रदान नहीं करता था। हालाँकि, न्यायालय ने किसी भी विस्तृत तरीके से यह नहीं बताया कि आधारिक संरचना क्या थी। हालाँकि कुछ न्यायाधीशों ने इस परिभाषा के कुछ उदाहरण दिए। इस मामले में अनुच्छेद 31सी के संशोधन को अमान्य माना गया।

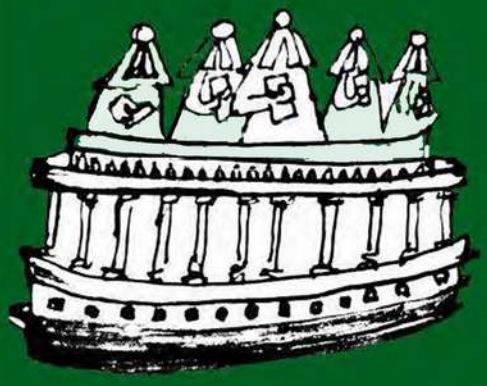

न्यायाधीश एच. आर. खन्ना ने कहा कि

"संविधान एक द्वार नहीं है, बल्कि एक रास्ता है। संविधान का मसौदा तैयार करने के पीछे एक जागरूकता है कि चीजें रुकती नहीं हैं, बल्कि आगे बढ़ती हैं। इससे यह तात्पर्य है कि एक प्रगतिशील राष्ट्र का जीवन, एक व्यक्ति के जीवन के समान होता है, जो स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील और जोशपूर्ण है। इसलिए संविधान में प्रशासन के कार्य में प्रयोग और परीक्षण के लिए पर्याप्त प्रावधान होना चाहिए। इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि संविधान एक तय किया गया उत्कृष्टतम रूप की बोली का दस्तावेज नहीं है, बल्कि लोगों के जीवन को व्यवस्थित करने का साधन है और समय समय पर बदला भी जा सकता है।"

मुख्य न्यायाधीश एस.एम. सिकरी ने कहा कि:

विधान के प्रत्येक प्रावधान में संशोधन किया जा सकता है बशर्ते कि संविधान की मूल नींव और आधारिक संरचना समान रहे। इस संरचना में निम्नलिखित विशेषताएं शामिल की जा सकती हैं:

- संविधान की सर्वोच्चता;
- सरकार का गणतंत्रवादी और लोकतांत्रिक रूप के आदर्श;
- संविधान का धर्मनिरपेक्ष चरित्र;
- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण;
- संविधान की संघीय संरचना आदि ।

उपरोक्त संरचना व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता के मूल बुनियाद पर बनी है। यह सर्वोच्च महत्व की है, इसलिए इसे किसी भी प्रकार के संशोधन द्वारा हटाया या फिर नष्ट नहीं किया जा सकता है।

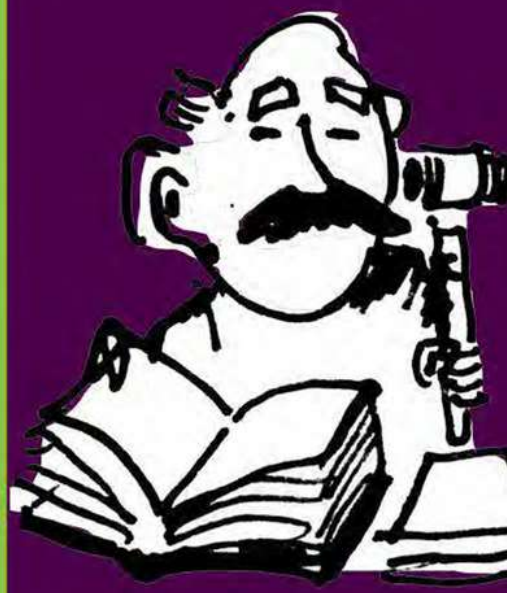

इडिगा अन्नमा
बनाम
आंध्र प्रदेश राज्य

मनु/एस सी/0128/1974

तथ्य

इस मामले में अपीलार्थी को एक महिला और उसके बच्चे की हत्या के लिए दोषी ठहराया गया और मौत की सजा सुनाई गई।

स्वीकार किए गए तथ्यों के अनुसार, अपीलार्थी के ऐसे व्यक्ति के साथ अवैध संबंध था, जिसका मृतक के साथ भी संबंध था। इस तथ्य का पता चलने पर, अपीलार्थी ने महिला और उसकी बेटी की हत्या कर दी। निचली न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषी पाया और मौत की सजा सुनाई, जिसकी बाद में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने पुष्टि की।

सर्वोच्च न्यायालय में एक आपराधिक याचिका दायर की गई थी।

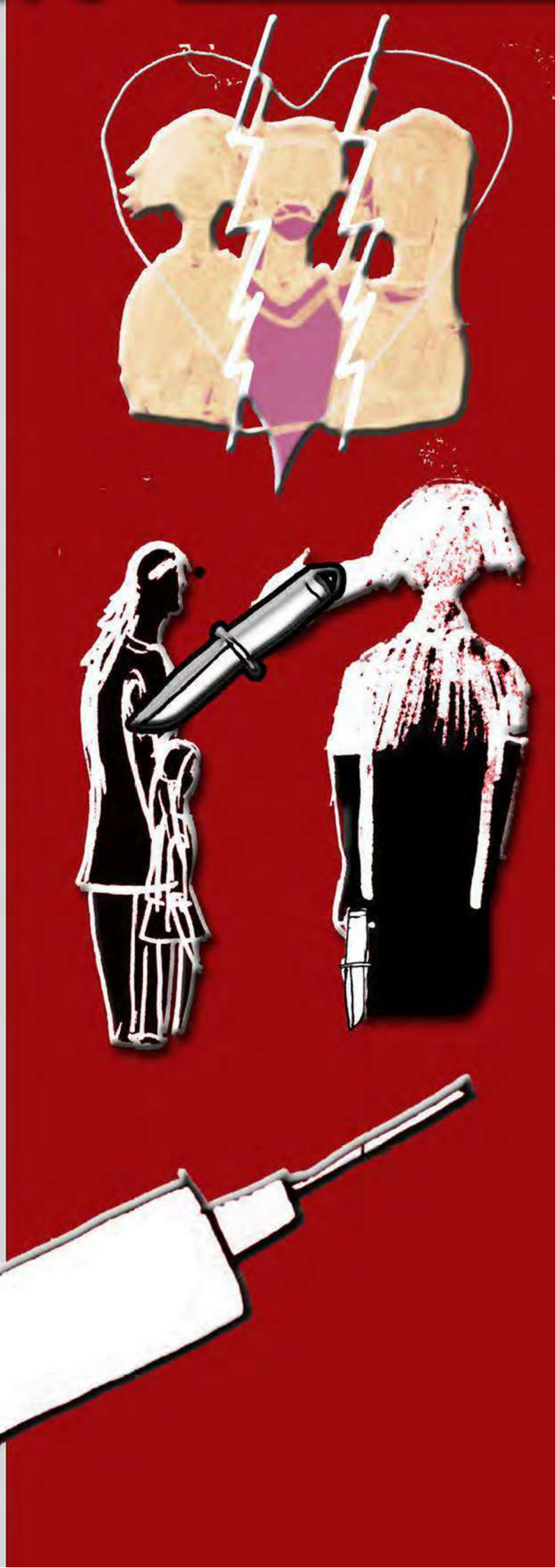

कानूनी प्रश्न

वर्तमान मामले में सवाल निचली अदालत द्वारा दी गई दोषसिद्धि और मृत्युदंड के मुद्दे पर था और क्या इस मुद्दे पर कम सजा के पक्ष में कोई सामाजिक दबाव था?

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय ने निचली अदालत की दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए कहा कि किसी भी सजा को तय करते समय दोषी के सामाजिक और व्यक्तिगत कारकों का परीक्षण करना महत्वपूर्ण है ताकि किसी भी सजा के सुधारात्मक और उसे हतोत्साहित करने वाली भूमिकाओं (Reformatory and Deterrent Role) को संतुलित किया जा सके।

मौत की सजा ख़त्म करने के पक्ष में विचार किये बिना, न्यायालय ने स्वीकार किया कि इस मुद्दे में आजीवन कारावास एक अधिक मानवीय सजा है।

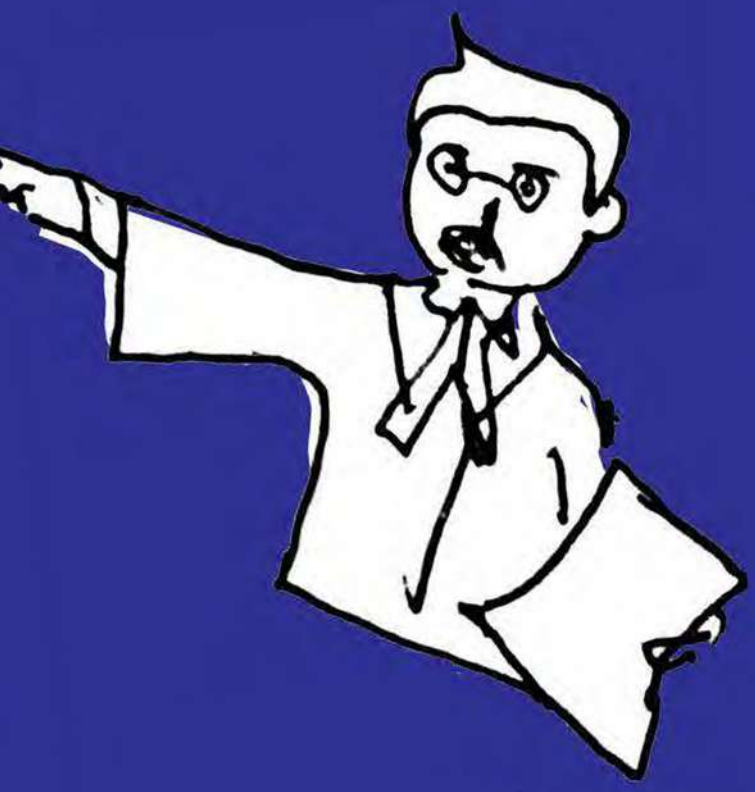

मृत्युदंड के मुद्दों में सजा कम करने वाले कारकों पर विचार किया जाना चाहिए जो की निम्नलिखित हैं :

- यदि आरोपी की उम्र बहुत कम है या बहुत ज्यादा है;
- यदि आरोपी ने सामाजिक-आर्थिक, मानसिक मजबूरियों के तहत काम किया हो, मगर कानून में उनके लिए कोई अपवाद का प्रावधान नहीं हैं या इन कारणों से उसकी सजा कम नहीं होती है;
- यदि इस मामले में कोई सामाजिक दबाव मौजूद है, जो कम सजा देने के पक्ष में है;
- यदि सह-अभियुक्त को आजीवन कारावास की कम सजा दी गई थी;
- यदि अभियुक्त ने अचानक उकसावे के तहत और बिना पूर्व-विचार के काम किया था।

वर्तमान मामले में, न्यायालय ने अपीलार्थी के लिंग और कम उम्र को इस तथ्य के साथ सजा कम करने वाली परिस्थितियों के रूप में माना कि वह एक युवा लड़के की माँ थी और उसे उसके वैवाहिक घर से निष्कासित कर दिया गया था। न्यायालय ने निर्धारित किया कि हालांकि ये कारक व्यक्तिगत रूप से अनिर्णायक थे, पर जब इनको एक समावेशी तौर पर देखा जाए तो वे मृत्युदंड को कम करने को सुझाते हैं। इन कारणों से न्यायालय ने अपीलार्थी की मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया।

manupatra®
JUSTICE adda

श्रीमती इंदिरा नेहरु गांधी बनाम श्री राज नारायण और अन्य

मनु/एस सी/0304/1975

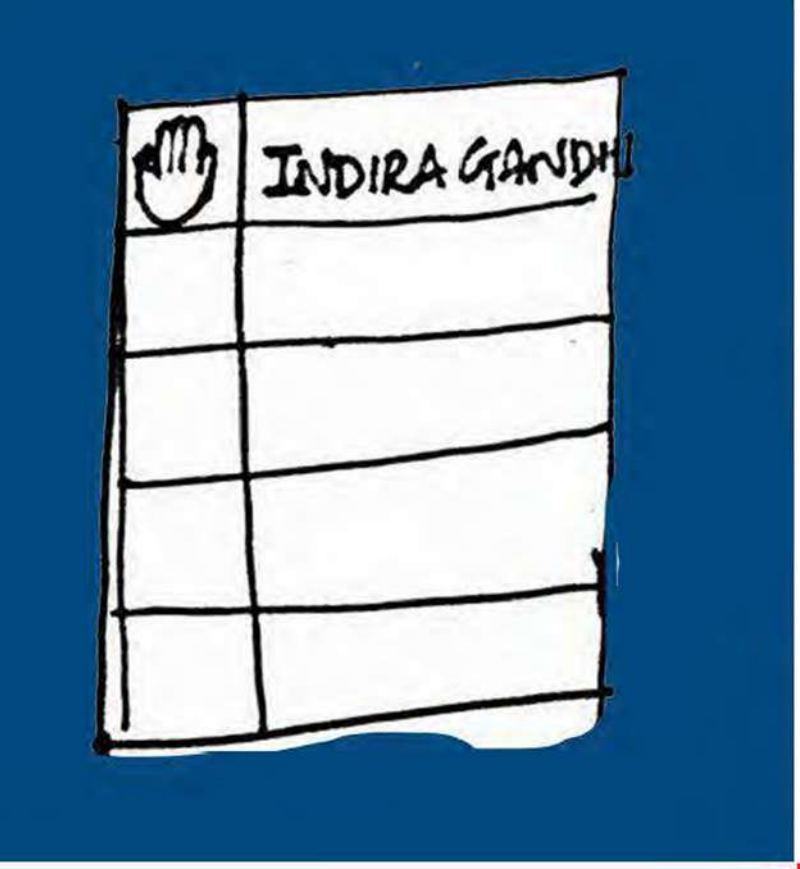

तथ्य

यह मामला इलाहाबाद उच्च न्यायालय के उस फैसले के खिलाफ अपील के संबंध में है जिसमें श्रीमती इंदिरा गांधी के चुनाव को भ्रष्ट कृत्यों के आधार पर अमान्य कर दिया गया था। इस दौरान, संसद ने 39वां संविधान संशोधन पारित किया, जिसने भारत के संविधान में एक नया अनुच्छेद 329ए जोड़ा।

अनुच्छेद 329ए (खंड 4) में कहा गया है कि प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव को देश के किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है इसके बजाय इसे संसद द्वारा गठित समिति के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।

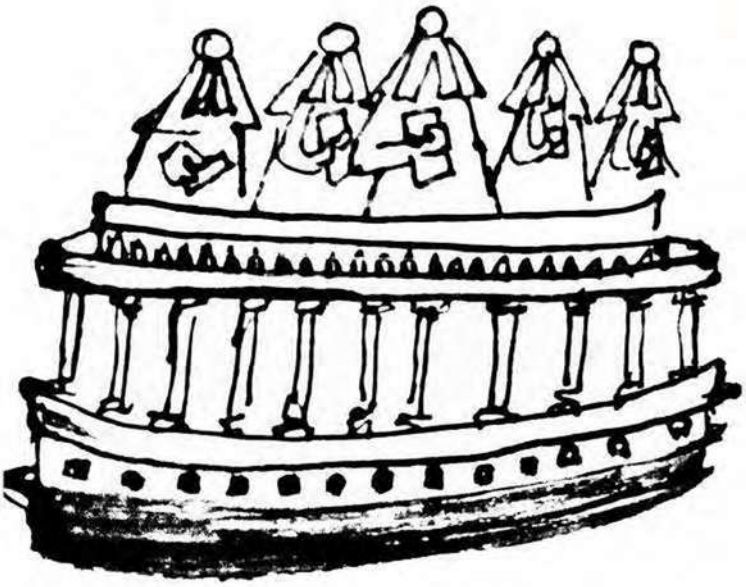

काननू प्रश्न

इस मामले में मुख्य प्रश्न अनुच्छेद 329ए के खंड 4 की कानूनी वैधता का था। सवाल यह था कि क्या उक्त अनुच्छेद का खंड (4) संविधान में दिए समानता के सिद्धांत (अनुच्छेद 14) का उल्लंघन करता है। और क्या यह खंड 4 न्यायालय के पास मौजूद न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) की शक्ति को नष्ट करता है?

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय ने इस खंड को इस आधार पर रद्द किया कि यह स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों का उल्लंघन करता है, जो भारतीय संविधान के मौलिक संरचना का हिस्सा था। चुनाव विवादों में न्यायिक समीक्षा को इस तरह से बाहर करने से भारतीय संविधान के बुनियादी ढाँचे को क्षति पहुँची।

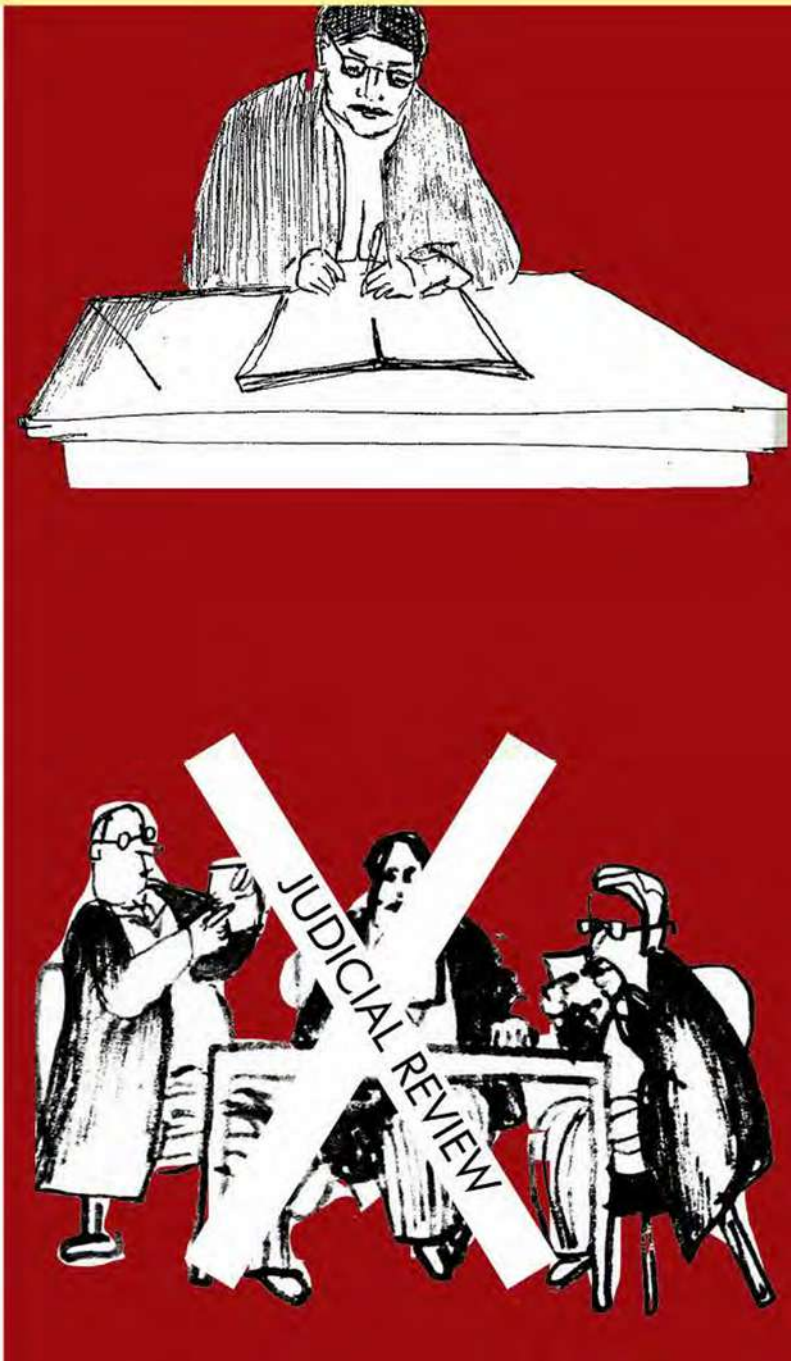

सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि अनुच्छेद 329ए का खंड 4 इस आधार पर असंवैधानिक और अमान्य था कि यह अनुच्छेद 14 में निहित समानता के अधिकार का पूरी तरह से खंडन करता था। न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया था कि ये नए प्रावधान मनमाने थे और विधि के शासन (Rule of Law) को नुकसान पहुंचाने और नष्ट करने के लिए तैयार किये गए थे ।

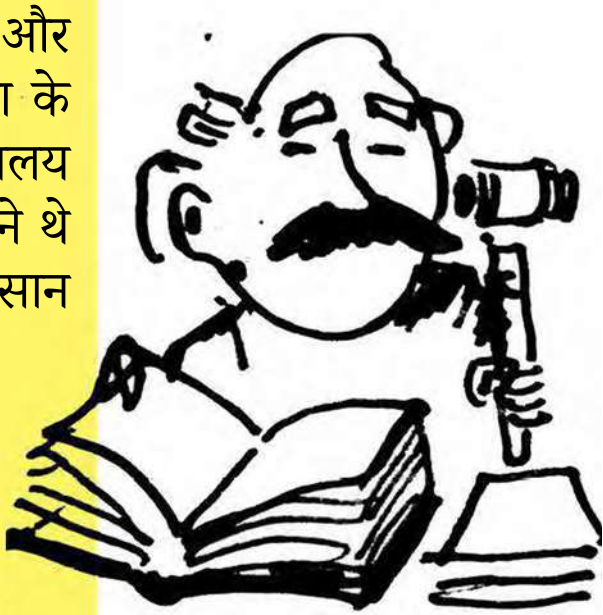

न्यायाधीश एच आर खन्ना ने कहा कि लोकतंत्र भी संविधान की आधारिक संरचना या बुनियादी ढांचे का भाग है जिसमें स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव शामिल हैं जिनका उल्लंघन कभी भी नहीं किया जा सकता है।

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद के मामले में निर्धारित आधारिक संरचना या बुनियादी ढांचे के सिद्धांतों की सूची में निम्नलिखित विशेषता को जोड़ा:

- कानून का शासन;
- लोकतंत्र जिसमें स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव शामिल हैं;
- न्यायिक समीक्षा और ;
- अनुच्छेद 32 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0133/1978

तथ्य

क्षेत्रीय पासपोर्ट कार्यालय, दिल्ली ने मेनका गांधी को सात दिनों के भीतर अपना पासपोर्ट जमा करने के लिए एक पत्र भेजा। पत्र में विस्तार से बताया गया है कि भारत सरकार ने 'जनहित' के आधार पर उनका पासपोर्ट जब्त करने का फैसला किया।

इसके बाद मेनका गांधी ने 'कारणों के विवरण' (Statement of Reasons) देने का अनुरोध किया, जिसके आधार पर क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी ने उनका पासपोर्ट जब्त कर लिया था। इस पर विदेश मंत्रालय ने उन्हें बताया कि उन्हें कारणों के विवरण की प्रति जारी नहीं करने का आदेश दिया गया था। इसके बाद उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका दायर की, जिसमें इस आधार पर आदेश को चुनौती दी गई कि यह संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करता है।

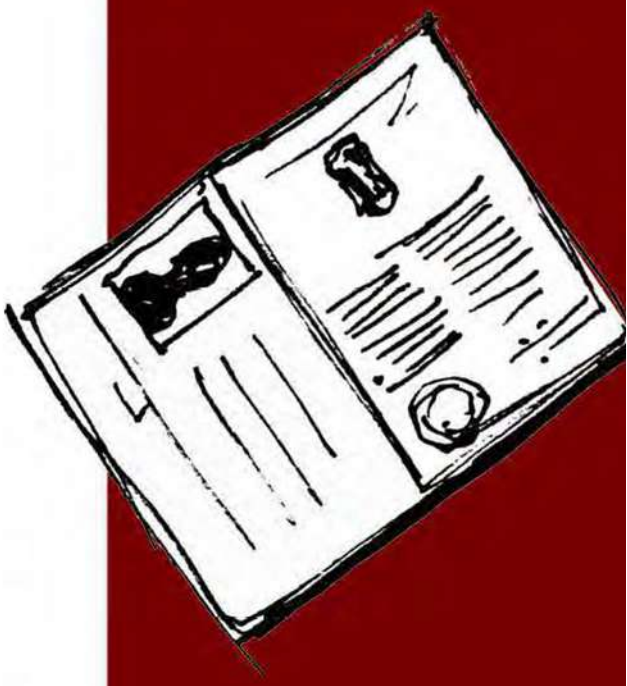

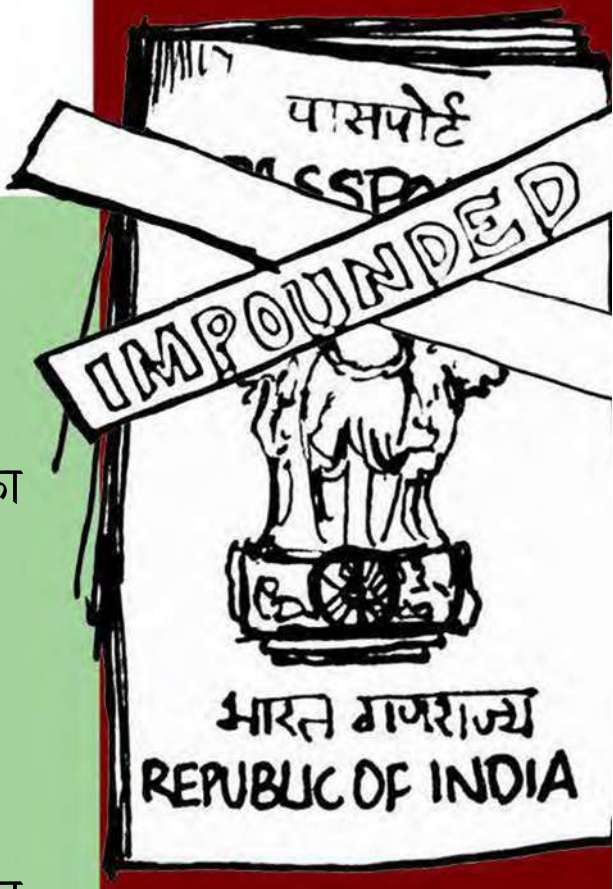

काननी प्रश्न

- क्या विदेश जाने का अधिकार अनुच्छेद 21 का हिस्सा है?

- क्या पासपोर्ट अधिनियम अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार से वंचित करने से पहले उक्त अनुछेद के तहत आवश्यक 'प्रक्रिया' निर्धारित निर्धारित करता है ?

- क्या पासपोर्ट अधिनियम की धारा 10(3) (सी) संविधान के अनुच्छेद 14,19(1)(ए) और 21 का उल्लंघन करती है?

- क्या क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी का विवादित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है?

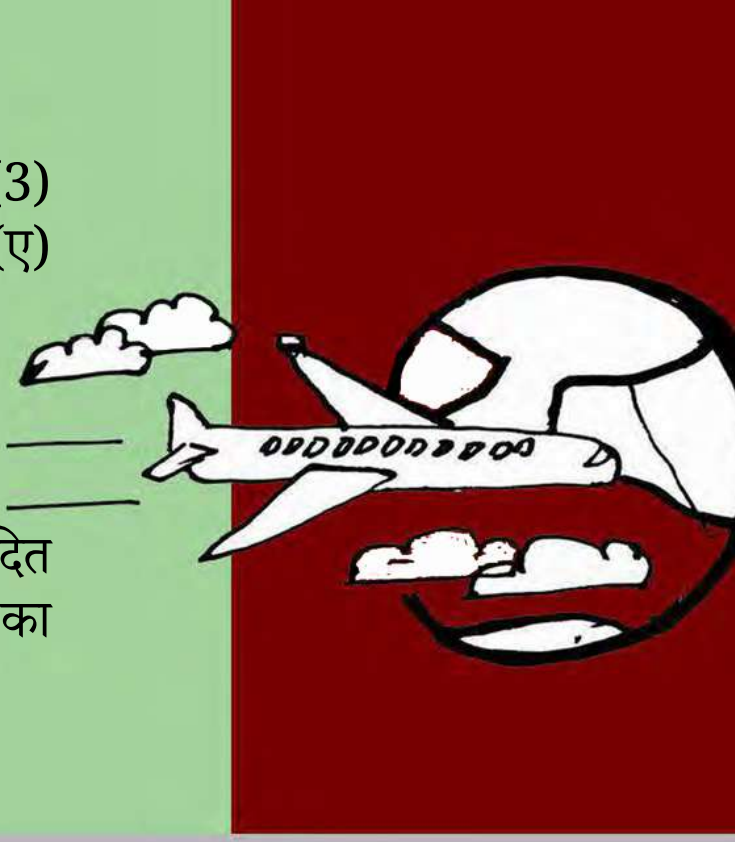

निर्णय

व्यक्तियों को उनके जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करने वाली प्रक्रियाएं निष्पक्ष और उचित होनी चाहिए। न्यायालय ने कहा: "कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए, न कि काल्पनिक, दमनकारी या मनमानी। यह प्रश्न कि क्या कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया से अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कम किया या छीना जाना उचित है ? इस बात पर चर्चा मात्र कल्पनिक चीज़ों से नहीं होनी चाहिए, बल्कि हमें अधिनियम के मुख्य उद्देश्य पर सोचना चाहिए। इसके अलावा हमें तत्काल स्थितियों पर विचार करना चाहिए जिनसे निपटने के लिए उन प्रशासनिक लोगों को बुलाया जा सकता है जिन पर अधिनियम को लागू करने का कर्तव्य है।"

इस मामले में न्यायालय ने कहा कि विदेश यात्रा करने का अधिकार 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' के अधिकार के भीतर आता है और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार है।

पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 10(3)(सी) के संबंध में, जिसमें कहा गया है: "यदि पासपोर्ट प्राधिकरण भारत की संप्रभुता और अखंडता, भारत की सुरक्षा, विदेश के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण संबंधों या आम जनता के हित में ऐसा करना आवश्यक समझता है", तो न्यायालय ने धारा की वैधता को स्वीकार करते हुए कहा कि इसका उपयोग संयम और बहुत सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

पासपोर्ट जब्त करने के कारणों को प्रस्तुत करने से इनकार करने की पासपोर्ट अधिकारियों की शक्ति के संबंध में, न्यायालय ने कहा कि कानूनी कारणों को अज्ञात रखने के लिए न्यायालय ऐसी शक्ति के प्रयोग की अनुमति नहीं दे सकता है, जिसका इस्तेमाल करने का एकमात्र कारण न्यायिक जांच से कारणों को दूर रखना है।

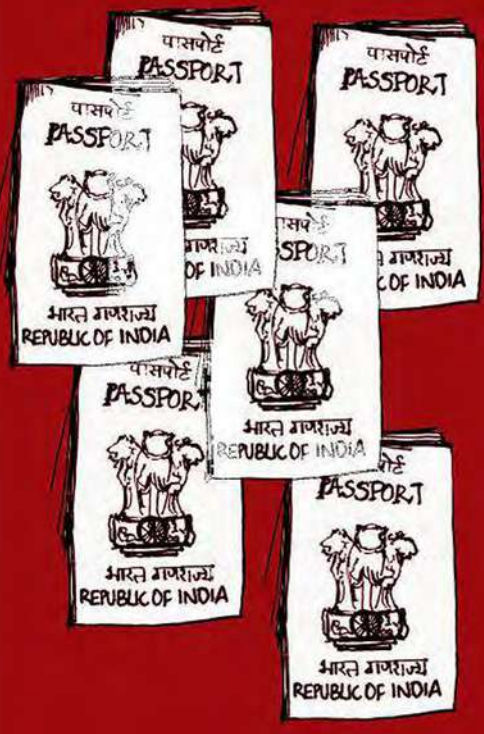

जहां इस धारा के तहत भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता या किसी पेशे को जारी रखने के अधिकार को कम करने के उद्देश्य से कोई आदेश दिया जाता है, वह आदेश अमान्य माना जाएगा।

अनुच्छेद 21, 19 और 14 के परस्पर सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 21 अनुच्छेद 19 को बाहर नहीं करता है और यहां तक कि किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21) से वंचित करने की प्रक्रिया निर्धारित करने वाले कानून को भी अनुच्छेद 19 और 14 दोनों की कसौटी पर खरा उतरना होगा।

नंदिनी सत्पथी बनाम पी एल दानी

मनु/एस सी/0139/1978

तथ्य

उड़ीसा की पूर्व मुख्यमंत्री नंदिनी सत्पथी को उनके खिलाफ सतर्कता मामले (Vigilance Case) के संबंध में कटक पुलिस के सामने पेश होने का निर्देश दिया गया था। उनसे आय से अधिक संपत्ति के कथित अधिग्रहण के संबंध में सवाल पूछे गए थे। इसके बाद उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 20(3) के तहत अपने अधिकार का प्रयोग किया और प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार कर दिया।

अनुच्छेद 20(3) गारंटी देता है कि किसी भी अपराध के आरोपी व्यक्ति को अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा।

जब उन्होंने प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार कर दिया, तो पुलिस उपाधीक्षक ने उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 179 के तहत प्रश्न करने के लिए अधिकृत एक लोक सेवक को उत्तर देने से इनकार करने के लिए शिकायत दर्ज की। नंदिनी ने मजिस्ट्रेट के समन जारी करने के फैसले को चुनौती देते हुए कहा कि अनुच्छेद 20(3) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161(2) के तहत उन्मुक्ति की शक्ति (Immunity Power; व्यक्ति उन सवालों के जवाब देने के लिए बाध्य नहीं है जो उसे आपराधिक आरोप में उजागर करते हैं) के लिए पर्याप्त थे। जब उच्च न्यायालय ने उनकी याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया, तो उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की।

काननी प्रश्न

- 'अभियुक्त' और 'अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर' शब्दों के संबंध में भारत के संविधान में अनुच्छेद 20(3) का दायरा और अर्थ क्या है?
- दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161(2) का दायरा और अर्थ क्या है?
- क्या आपराधिक मनःस्थिति (Mens Rea) धारा 179, भारतीय दंड संहिता का एक आवश्यक घटक है, और यदि ऐसा है, तो इसकी प्रकृति क्या है? क्या केवल यह आशंका कि किसी भी उत्तर में दोषी होने की क्षमता है, अभियुक्त को बचा सकती है ?

निर्णय

न्यायालय ने अनुच्छेद 20(3) के दायरे पर काफी व्यापक दृष्टिकोण रखते हुए कहा कि इसका प्रतिषेधात्मक दायरा (Prohibitive Scope) न केवल न्यायालय में प्रक्रिया के लिए बल्कि अन्वेषण (Investigation) के चरण तक भी फैला हुआ है।

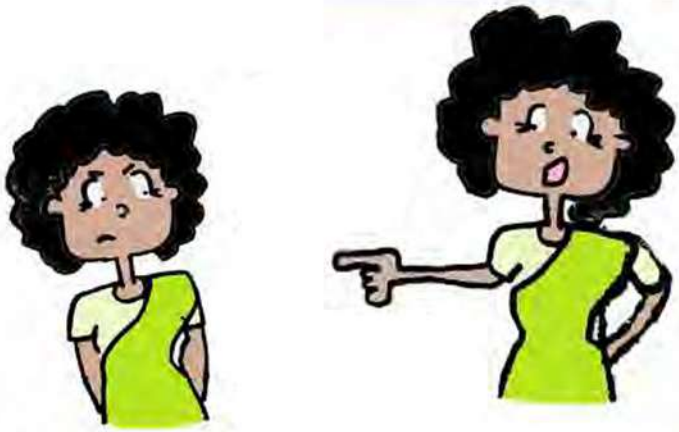

आत्म-आरोप पर प्रतिबंध केवल उस अपराध तक ही सीमित नहीं है जिसके संबंध में पूछताछ की गई है, बल्कि यह अन्य अपराधों तक भी विस्तारित है जिनके बारे में अभियुक्त को अपने उत्तर से स्वयं को जिम्मेदार बनाने की उचित आशंका है।

पुलिस अधिकारियों के दबाव के बावजूद अनैच्छिक आत्म-दोषारोपण (Involuntary Self Incrimination) से बचाव करते हुए, न्यायालय ने 'जबरन गवाही' को अनुच्छेद 20 (3) का उल्लंघन पाया। इसमें कहा गया कि, 'जबरन गवाही' का अर्थ न केवल शारीरिक धमकियों और हिंसा द्वारा प्राप्त साक्ष्य है, बल्कि मानसिक यातना, डर का माहौल,

जबरदस्ती, थका देने वाली पूछताछ, अति सहनशीलता और डराने के तरीकों के रूप में भी है।

इस न्यायालय ने यह भी माना कि जवाब देने या सच्चाई से जवाब देने से इनकार करने के बाद आने वाले कानूनी खतरों को अनुच्छेद 20(3) के अर्थ के अंतर्गत मजबूरी नहीं माना जा सकता है।

न्यायालय ने पूछताछ के दौरान एक वकील की उपस्थिति का सुझाव दिया। यह उन स्थिति में मदद कर सकता है जब कानूनी तंत्र द्वारा गोपनीयता तरीके से या जबरदस्ती आत्म-दोषारोपण स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा हो।

आपराधिक मनःस्थिति आईपीसी की धारा 179 (अधिकृत लोक सेवक के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने से इंकार करना) का एक आवश्यक घटक है। हालांकि इसके तहत अपराध स्थापित नहीं किया जा सकता है । यदि लोक सेवक द्वारा रखे गए प्रश्नों का उत्तर देने पर दायित्व का जोखिम है, फिर भी एक आरोपी अनुचित और अस्पष्ट आशंकाओं और संभावनाओं के आधार पर उत्तर देने से इनकार नहीं कर सकता है। न्यायालय ने निर्धारित किया कि एक अभियुक्त जवाब देने के लिए बाध्य है जहां अपराध करने की कोई स्पष्ट प्रवृत्ति नहीं है।

हुसैनारा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य

मनु/एस सी/0119/1979
मनु/एस सी/0121/1979

विचारण-पूर्व हिरासत (Pre-Trial Detention) का मुद्दा

इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित लेखों ने बिहार राज्य में न्यायालयों में मुकदमे की प्रतीक्षा में वर्षों से जेल की सलाखों के पीछे बड़ी संख्या में पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की उपस्थिति का खुलासा किया।

कानूनी प्रश्न

यहाँ कानूनी सवाल अभियुक्त के मौलिक अधिकारों और राज्य के कर्तव्य पर था जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 39ए में गरीबों को मुफ्त कानूनी सेवाओं के संबंध में व्यक्त किया गया है। क्या लंबित विचारण प्रणाली (Delayed Trial System) में इन सेवाओं के इनकार करने का मतलब भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के खिलाफ माना जाएगा ?

निर्णय

न्यायालय के अनुसार इन व्यक्तियों के विचारण (Trial) शुरू होने से पहले लंबे समय तक कैद में रखकर बुनियादी स्वतंत्रता से वंचित किया गया और इस प्रकार यह मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन है। न्यायालय ने पाया कि कानूनी और न्यायिक प्रणाली निर्धन और गरीबों के नुकसान के लिए काम कर रही है। न्यायालय ने भारतीय न्यायिक प्रणाली के पुनर्गठन का आह्वान किया।

जमानत मुचलके के बारे में

न्याय को गरीबों की पहुंच और समझ से बाहर रखने के लिए जमानत देने की एक अत्यधिक असंतोषजनक प्रणाली को जिम्मेदार पाया गया। यह व्यवस्था गरीबों पर अत्यधिक कठोर थी और केवल अमीरों के लाभ के लिए काम करती थी। न्यायालयों द्वारा निर्धारित भारी राशि के कारण गरीब जमानत लेकर अपनी रिहाई सुनिश्चित नहीं कर सकते है।

न्यायालय ने केवल प्रतिभूति (Surety) के साथ विचारण से पहले जमानत पर छोड़े जाने वाली पुरानी प्रथा को बंद करने का आह्वान किया। न्यायालय ने आर्थिक दायित्वों के बिना व्यक्तिगत जमानतपत्र पर रिहाई का भी समर्थन किया।

"जमानत प्रणाली, जैसा कि आज चल रही है, गरीबों के लिए बड़ी कठिनाई पहुंचने वाली प्रक्रिया है और अगर हम वास्तव में गरीबी के बुरे प्रभावों को समाप्त करना चाहते हैं और न्याय देने में गरीबों के साथ निष्पक्ष और न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि जमानत प्रणाली में पूरी तरह से सुधार किया जाए ताकि गरीबों के लिए न्याय के हित को खतरे में डाले बिना मुकदमे से पहले रिहाई प्राप्त करना संभव हो।"

त्वरित विचारण (Speedy Trials) के बारे में

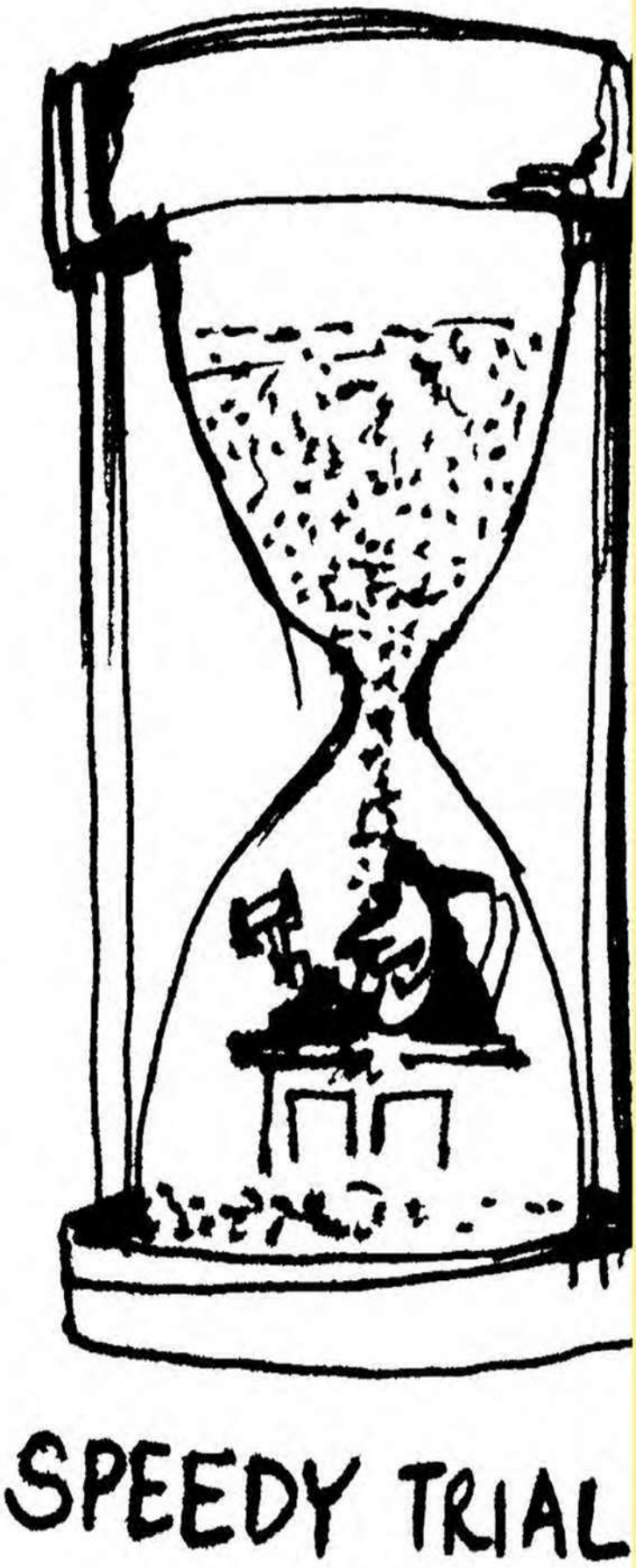

न्यायालय के अनुसार, न्यायालयों की स्थापना अन्वेषण या जांच तंत्र (Investigative Machinery) को मजबूत करने, अधिक न्यायाधीशों की नियुक्ति आदि जैसे आवश्यक कदम उठाकर त्वरित विचारण के लिए अभियुक्त के मौलिक अधिकार को लागू करना राज्य का कर्तव्य था। एक व्यापक कानूनी सेवा कार्यक्रम की शुरुआत को समय की आवश्यकता पाया गया। इस तरह के कार्यक्रम को गरीबों की जमानत प्राप्त करने या उनकी गरीबी के कारण वकील नियुक्त करने में असमर्थता की समस्या के समाधान के रूप में देखा गया था।

न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 39ए को भी लागू किया।

“यह प्रत्येक आरोपी का एक संवैधानिक अधिकार है जो गरीबी, निर्धनता या असंबद्ध स्थिति जैसे कारणों से वकील को नियुक्त करने और कानूनी सेवाओं को सुरक्षित करने में असमर्थ है, ऐसे मुद्दों में सरकार की एक वकील प्रदान करने की जिम्मेदारी है। सरकार को यह जिम्मेदार निभानी होगी यदि मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकता है, बशर्ते कि आरोपी व्यक्ति ऐसे वकील के प्रावधान पर आपत्ति न करे।”
उपरोक्त तर्क के आधार पर, न्यायालय ने इंडियन एक्सप्रेस के दो अंकों में उल्लिखित विचाराधीन कैदियों को बिना किसी आर्थिक दायित्व के व्यक्तिगत मुचलके पर रिहा करने का फैसला सुनाया।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन

मनु/एस सी/0265/1979

तथ्य

तत्काल मामले में तिहाड़ जेल में एक दोषी सुनील बत्रा द्वारा एक न्यायाधीश को लिखे गए पत्र को एक याचिका के रूप में न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि एक वार्डन ने प्रेम चंद नाम के एक अन्य दोषी का बेरहमी से यातनाऐं देकर घायल कर दिया था।

कानूनी प्रश्न

न्यायालय के समक्ष प्रश्न जेल में कैदियों के मानवाधिकारों के सन्दर्भ में था। इस मुद्दे में यह पूछा गया कि दोषसिद्धि के बावजूद क्या कैदियों को मौलिक अधिकारों का सरंक्षण मिलना चाहिए ?

निर्णय

न्यायालय ने जेल अधिकारियों द्वारा की गई ज्यादतियों के खिलाफ कैदी के अधिकार को मान्यता देकर 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' (Habeas Corpus) रिट की प्रक्रिया की सीमाओं को जनता के लिए थोड़ा आसान बना दिया।

न्यायालयों की नियम बनाने की सक्रिय भूमिका को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने कहा कि न्यायालय पुस्तकों में केवल एक विशिष्ट सर्वशक्तिमान संस्था नहीं है, बल्कि वह एक सक्रिय संस्थान है जो जनता की आशा की केंद्र बिंदु के समान है।

पीठ ने कैदियों की स्थिति के संबंध में महत्वपूर्ण सिद्धांत निर्धारित किए। न्यायालय ने अपने फैसले में संयुक्त राष्ट्र द्वारा सामान्य सभा (9 दिसंबर 1975 का संकल्प 3452) में अपनाई गई यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या सजा से सभी व्यक्तियों की सुरक्षा की घोषणा पर भी जोर दिया।

संविधान पीठ ने कैदियों के मौलिक अधिकारों को बरकरार रखा और कहा कि:

क्या कैदी एक इंसान माना जाएगा ?

इसका जवाब दिया गया कि “हाँ बिल्कुल, कैदी एक इंसान या व्यक्ति ही है। इस सवाल का नकारात्मक उत्तर देने का अर्थ है कि हर वो राष्ट्र और संविधान दोषी और अमानवीय होगा जहाँ कैदियों को इंसान नहीं माना जाए। इसका जवाब न होना यह भी दर्शाएगा कि विश्व में कानूनी व्यवस्था महज एक औपचारिकता है। इसीलिए कैदियों को इंसान के सभी अधिकार प्राप्त होना चाहिए क्योंकि अब इन अधिकारों को अंतरराष्ट्रीय संधि में मान्यता मिली है, जिस पर हमारे देश ने हस्ताक्षर कर सहमति जताई हैं। बत्रा के मामले में इस न्यायालय ने हैंड-ऑफ सिद्धांत (Hands off Doctrine ; जिसके अंतर्गत अपराधी अपने अपराध के परिणामस्वरूप न केवल अपनी स्वतंत्रता खोते हैं, बल्कि अपने सभी व्यक्तिगत अधिकारों को खो देते हैं है और उस समय के लिए राज्य के दास के समान हो जाता है) को खारिज कर दिया है और यह फैसला सुनाया कि जेल में प्रवेश करते ही व्यक्ति के मौलिक अधिकारों में कमी आ सकती है पर उन्हें खत्म होना नहीं माना जा सकता है। हमारी संवैधानिक संस्कृति अब जेल न्याय और न्यायिक क्षेत्राधिकार के पक्ष में भी स्थापित हो गई है।”

निर्देश:

यह मानते हुए कि कैदी प्रेमचंद को अवैध रूप से प्रताड़ित किया गया था, न्यायालय ने जेल प्रशासन के मानवीयता को सुनिश्चित करने के लिए राज्य और जेल कर्मचारियों को निम्नलिखित स्पष्ट और बाध्यकारी निर्देश दिए:

- **पर्यवेक्षी न्यायिक भूमिका (Supervisory Judicial Role)**: जिला मजिस्ट्रेट, सत्र न्यायाधीश, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नामित वकीलों को कैदियों के साथ साक्षात्कार, यात्रा और गोपनीय वार्तालाप के लिए सभी सुविधाएं दीं जानी चाहिए। हालाँकि यह करते समय जेल में अनुशासन और सुरक्षा का ख्याल रखा जाना चाहिये। इस प्रकार नामित वकील समय-समय पर दौरा करने और संबंधित न्यायालय के परिणामों को रिकॉर्ड करने और रिपोर्ट करने के लिए बाध्य हैं जो कानूनी शिकायतों के लिए महत्वपूर्ण हैं।

- **शिकायत निवारण प्रणाली (Grievance Redressal)**: कैदियों द्वारा शिकायत दर्ज करने के लिए डिब्बों को रखा जाएगा। इन डिब्बों को बार-बार खोला जाना चाहिए और निवारण के लिए उचित कार्रवाई की जानी चाहिए।

- **न्यायिक हस्तक्षेप (Judicial Intervention)**: मजिस्ट्रेट और सत्र न्यायाधीश व्यक्तिगत रूप से जेलों का दौरा करेंगे, शीघ्र जांच करेंगे और उपयुक्त उपचारात्मक कार्रवाई करेंगे। उचित मामलों में, उच्च न्यायालय को रिपोर्ट दी जाएगी और यदि आवश्यक हो तो 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' (Habeas Corpus)' रिट की कार्रवाई की जाएगी।

- **न्यायिक मूल्यांकन (Judicial Appraisal):** सत्र न्यायाधीश से मूल्यांकन किए बिना कोई एकांत कारावास (Solitary Confinement) कोई कठोर श्रम या आहार में जबरन परिवर्तन, कोई अन्य विशेषाधिकारों और सुविधाओं से इनकार और अन्य जेलों में कोई स्थानांतरण नहीं किया जाएगा।

इनके अलावा न्यायालय ने कुछ सिफारिशें की:

- राज्य कैदी के अधिकारों के बारे में कानूनी जागरूकता लाने के लिए हिंदी में एक कैदी पुस्तिका तैयार करेगा। सुधार कार्यक्रमों के संबंध में समय-समय पर बुलेटिन बोर्ड अपडेट और शिकायत निवारण के लिए एक वॉल पेपर लगाये जायेंगे। (कैदी अधिनियम की धारा 61)

- भारत राज्य संयुक्त राष्ट्र द्वारा कैदियों के प्रति व्यवहार के लिए मानक न्यूनतम नियमों का पालन करने का प्रयास करेगा। इन मानकों में विशेष रूप से उनके द्वारा करे गए काम और मजदूरी, गरिमापूर्ण व्यवहार, सामुदायिक समावेश और सुधारात्मक रणनीतियों से जुड़े नियम शामिल हैं ।

- जेल कर्मचारियों के लिए एक सुधारात्मक पाठ्यक्रम जो संवैधानिक मूल्यों, उदारवादी दृष्टिकोण और तनाव मुक्त प्रबंधन को विकसित करेगा।

- कैदियों के लिए मुफ्त कानूनी सेवा कार्यकर्मो के लिए पेशेवर संगठनों, न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त, को बढ़ावा दिया जाएगा। इनमें से एक उदाहरण निःशुल्क कानूनी सहायता के लिए सर्वोच्च न्यायालय की सोसायटी है।

मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0075/1980

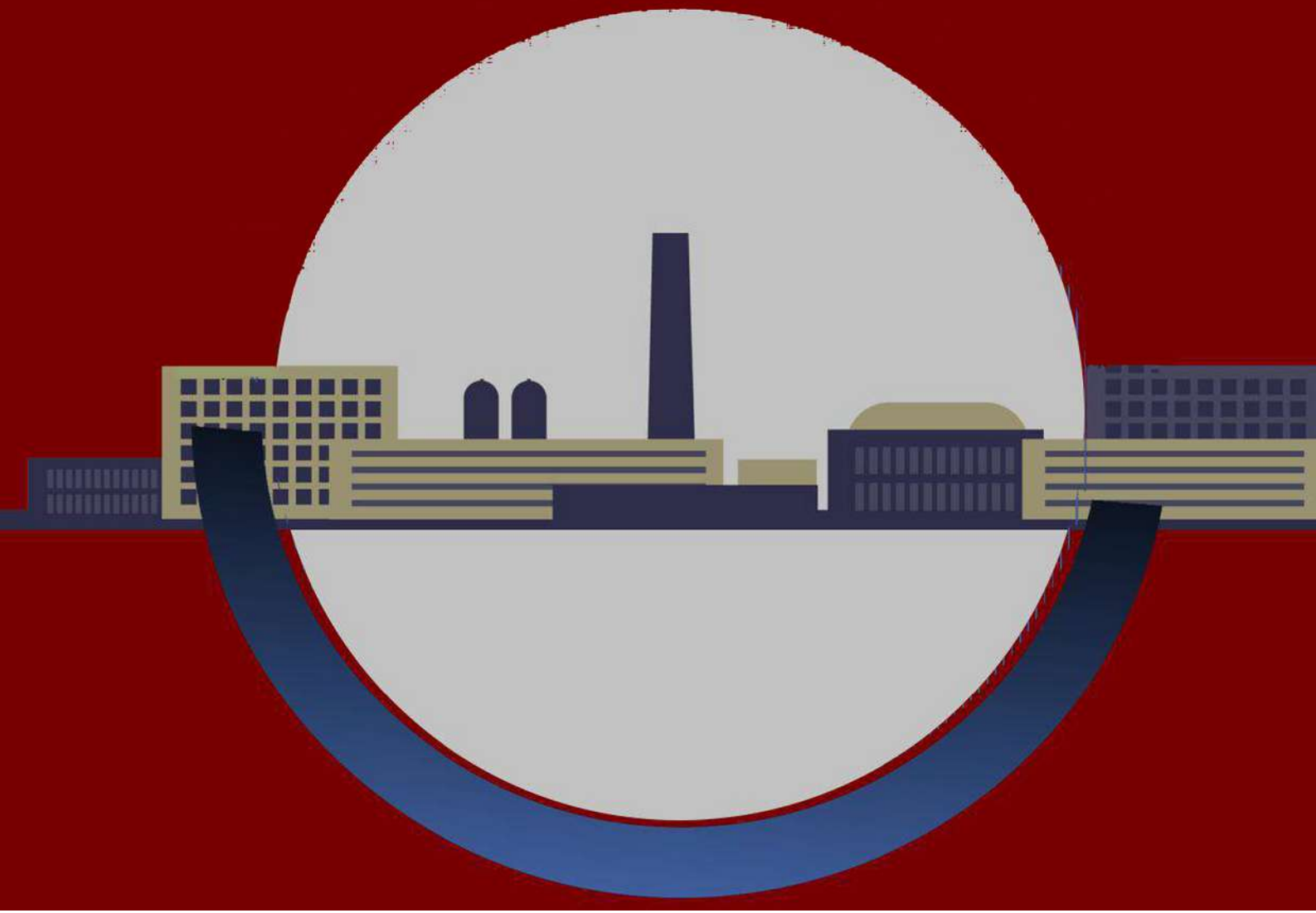

तथ्य

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड एक निजी कपड़ा कंपनी थी। अगस्त 1970 में, भारत सरकार ने उद्योग (विकास विनियमन) अधिनियम, 1951 के तहत कम उत्पादन वाली कंपनियों की जांच का आदेश दिया। सरकार ने 19 अक्टूबर 1971 को, सरकार को राष्ट्रीय वस्त्र निगम लिमिटेड को मिनर्वा मिल के प्रबंधन को संभालने के लिए अधिकृत किया । इस बदलाव का आधार यह था कि इस मिल के मामलों का प्रबंधन इस तरह से किया जा रहा था जो सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक था, जिसके कारण कंपनी को सिक टेक्सटाइल अंडरटेकिंग्स (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1974 (Sick Textile Undertakings (Nationalization) Act 1974) के तहत राष्ट्रीयकृत किया गया था।

याचिकाकर्ता ने इस अधिनियम की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी। उन्होंने 42वें संशोधन की धारा 4 और 55 की संवैधानिकता को भी चुनौती दी।

कानूनी प्रश्न

क्या संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 और 55 द्वारा किए गए संशोधन संविधान के मूल या आधारिक संरचना को नुकसान पहुंचाते हैं?

निर्णय

संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 की धारा 4 और 55 में संविधान में कई बदलाव प्रस्तुत किए गए। धारा 4 ने अनुच्छेद 31(सी) में संशोधन किया जबकि धारा 55 ने संविधान के अनुच्छेद 368 में खंड (4) और (5) संशोधन किए। खंड (5) के अंदर संशोधन शक्ति पर लगी सभी सीमाओं को हटाना मुख्य उद्देश्य था ,जबकि खंड (4) न्यायालयों को संविधान के किसी भी संशोधन पर सवाल उठाने की उनकी शक्ति से वंचित कर रहा था।

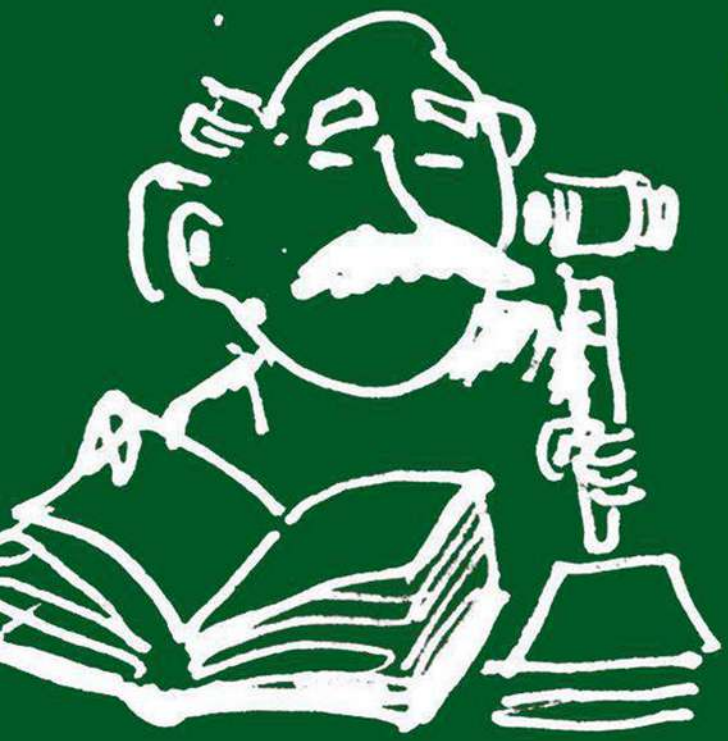

सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 368 के दोनों नए जोड़े गए खंडो को असंवैधानिक और अमान्य माना। इन खंडो को केशवानंद भारती मामले में इस न्यायालय के फैसले द्वारा संशोधन करने की संसद की शक्ति पर लगाई गई सीमाओं का उल्लंघन पाया गया। यह माना गया कि संसद संविधान की बुनियादी और आवश्यक विशेषताओं को नष्ट करने के लिए अपनी संशोधन शक्तियों का विस्तार नहीं कर सकती है।

न्यायालय ने कहा, “हमारे संविधान के तीन अनुच्छेद 14, 19 और 21, अनियंत्रित शक्ति के खतरे और जनता के स्वतंत्रता के अधिकार के बीच खड़े हैं जो टैगोर अपने देश के लिए चाहते थे।”

“भाग III (मौलिक अधिकार) और IV (राज्य के नीति निदेशक तत्व) एक ही पायदान पर खड़े हैं। एक को दूसरे पर प्राथमिकता देना संविधान के सामंजस्य को बिगाड़ना है। मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों के बीच यह सामंजस्य और संतुलन संविधान के बुनियादी ढांचे की एक आवश्यक विशेषता है।”

manupatra®

JUSTICE adda

बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य

मनु/एस सी/0111/1980

तथ्य

बच्चन सिंह को तीन व्यक्तियों की हत्या के लिए दोषी ठहराया गया और मौत की सजा सुनाई गई। उच्च न्यायालय ने मृत्युदंड को बरकरार रखा था। सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका (Special Leave Petition) द्वारा अपील करते हुए, याचिकाकर्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (CrPC) की धारा 354 (3) में दी गयी मृत्युदंड की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी।

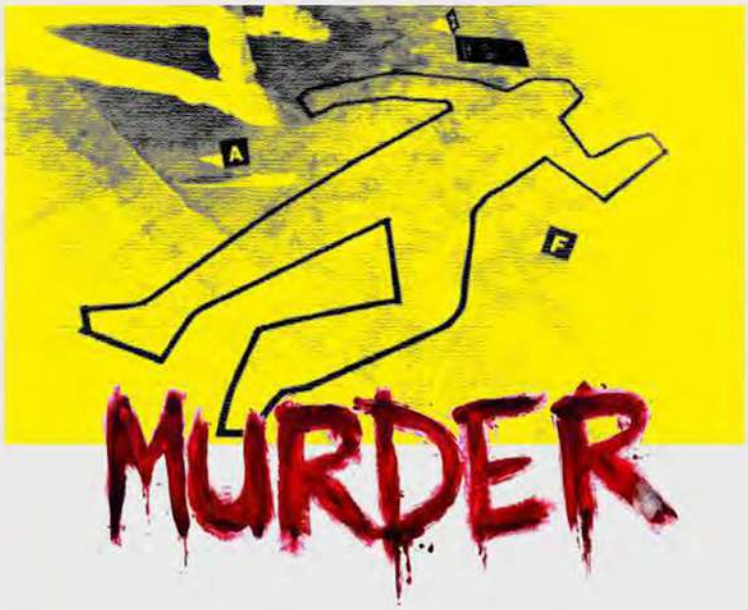

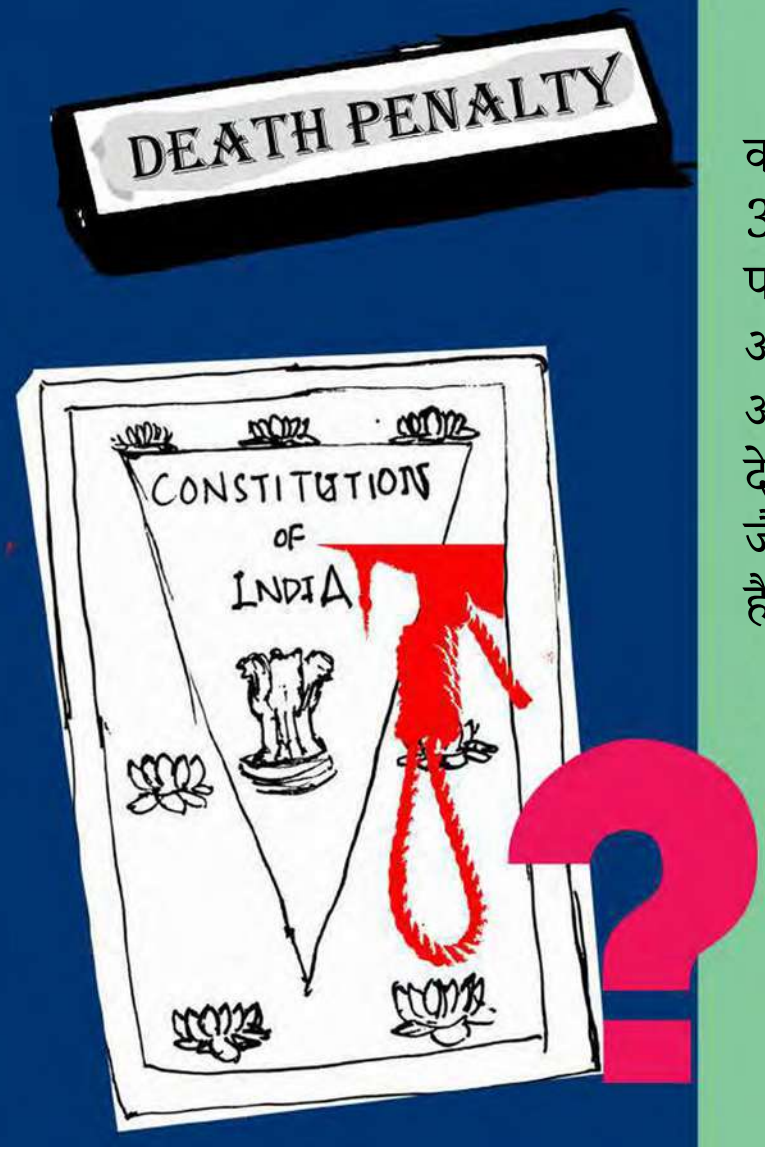

कानूनी प्रश्न

क्या भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के साथ धारा 354(3) को यदि साथ पढ़ा जाया तब मृत्युदंड मनमाना, अनुचित और असंवैधानिक था? क्या निचली अदालतों द्वारा पाए गए तथ्यों को मृत्युदंड देने के लिए 'विशेष कारण' माना जाएगा जैसा कि धारा 354(3) के तहत आवश्यक है।

निर्णय

उक्त मामले में न्यायालय ने आईपीसी की धारा 302 की संवैधानिकता को दी गई चुनौती को खारिज कर दिया। न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 19(1) के तहत गारंटी किये छह मौलिक स्वतंत्रताएं पूर्ण अधिकार नहीं हैं। सबसे पहले, वे एक नागरिक के दूसरे नागरिक द्वारा हनन या उल्लंघन न किये जाने की बात करते है।

इसका मतलब है कि यह स्वंत्रताओं के अधिकार का इस्तेमाल हमें दायरे में रहकर करना होगा। नागरिकों को ऐसे अधिकार नहीं प्रदान किये जा सकते जो समाज के दूसरे नागरिकों के लिये अहितकर हों। यह 'सिक् उटेरी टुओ उट अलिएनुम नॉन लैइडस'(Sic uteri tuo ut alienum non laedas) के सिद्धांत पर आधारित है जिसके अनुसार हमें अपनी स्वयं की संपत्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि अन्य लोगों की संपत्ति को नुकसान न पहुंचे। दूसरा, राज्य द्वारा खंड (2) से (6) के तहत इन अधिकारों पर उचित प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। और कुछ परिस्थिति में राज्य इन अधिकारों पर रोक तक लगा सकता है।

"इस प्रावधान के संदर्भ में वाक्यांश 'विशेष कारण' का स्पष्ट रूप से अर्थ 'असाधारण कारण' है जो अपराधी के साथ साथ अपराध में असाधारण गंभीर परिस्थितियों को ध्यान में रखता है।"

हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युदंड देने में 'दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों' का सिद्धांत निर्धारित किया। न्यायालय ने कहा कि इसका उद्देश्य अपराधी की परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध से संबंधित अपराध कम करने वाली और उत्तेजक परिस्थितियों को भी पर्याप्त महत्व देना है।

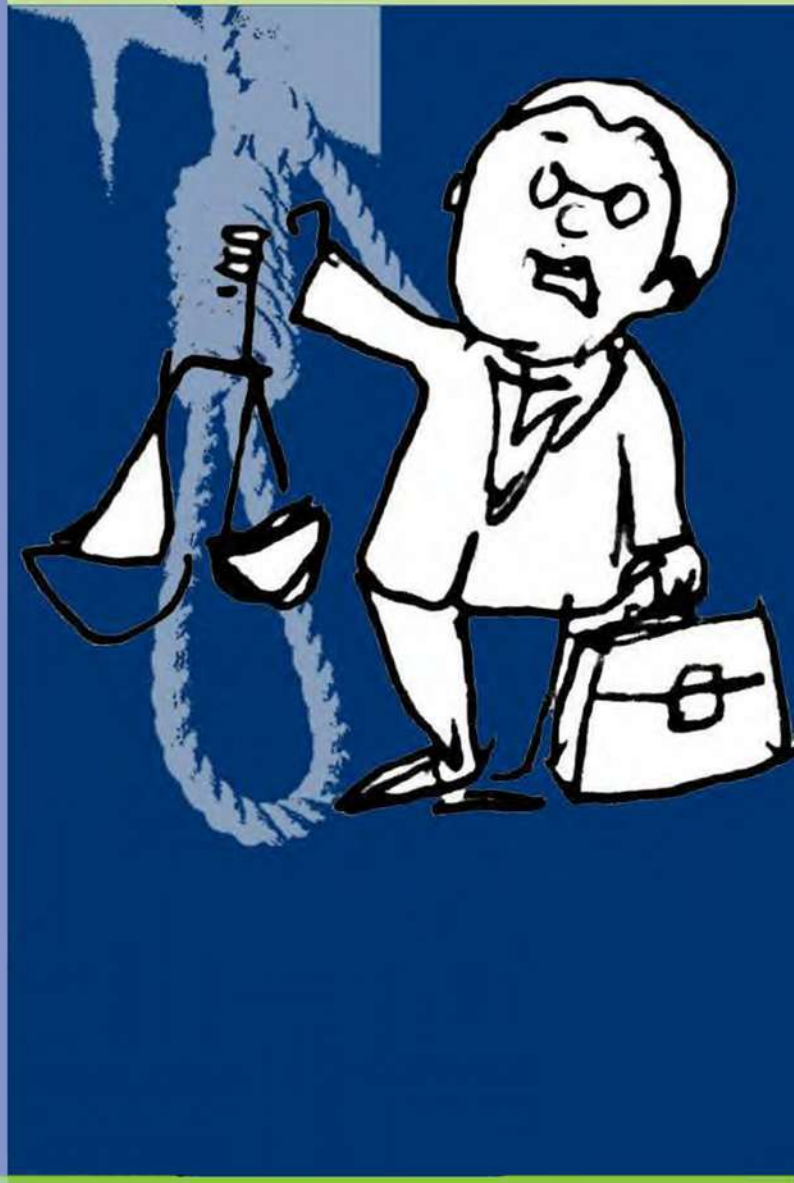

"इस आदेश में हमारे द्वारा बताए गए उदाहरणों और दिशानिर्देशों की सहायता से इस चिंता को व्यक्त करना जरूरी है कि हमारी कानून प्रणाली अधिक ईमानदारी से देखभाल और मानवीय चिंता के साथ धारा 354(3) के तहत महत्वपूर्ण कार्य का निर्वहन करेंगी। हत्या के दोषी व्यक्तियों के लिए आजीवन कारावास एक नियम है और मृत्युदंड एक अपवाद माना जाएगा जो सभी मामलों में नहीं दी जा सकती है।"

एस.पी.गुप्ता बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0080/1981

तथ्य

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांत को प्रभावित करने वाले प्रश्न उठाए, जो भारत के संविधान की आधारिक संरचना का एक भाग है।

कानूनी प्रश्न

न्यायालय में उठाए गए मुद्दों में से एक सवाल केंद्र सरकार के आदेशों की वैधता के बारे में था ,जिस आदेश के जरिये दो न्यायाधीशों को नियुक्ति नहीं दी गयी थी। इसके साथ साथ एक सवाल कानून मंत्री, मुख्य न्यायाधीश, उच्च न्यायालय दिल्ली और भारत के मुख्य न्यायाधीश के बीच पत्र के माध्यम से चर्चा के खुलासे के संबंध में था।

निर्णय

न्यायालय ने तर्क दिया कि एक खुले और प्रभावी सहभागी लोकतंत्र के लिए सरकार के काम पर जवाबदेही होना और जानकारी की जनता तक पहुंच की आवश्यकता होती है।

शुरु में, न्यायालय ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में विस्तार से बताते हुए कहा कि:

“यह खुद को याद दिलाना जरुरी है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता की अवधारणा केवल कार्यपालिका के दबाव या प्रभाव से स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं है। यह स्वतंत्रता एक बहुत व्यापक अवधारणा है जिससे न्यायपलिकाएँ किसी भी प्रकार के दबाव से आज़ाद होंगी। इस स्वतंत्रता के कई अंग हैं, जिसमें केंद्र सरकार और अधिकारियों से निर्भयता, आर्थिक या राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता और न्यायाधीशों के वर्ग के मन में पहले से बनी धारणाओं से स्वतंत्रता भी शामिल है।”

भारत के संविधान के अनुच्छेद 124 और 217 सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित हैं। उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति में अंतिम निर्णय किसका है, यह तय करते समय न्यायालय द्वारा उन पर विस्तार से चर्चा की गई।

न्यायालय ने माना कि केवल दो आधार थे जिनके आधार पर नियुक्ति और स्थानांतरण संबंधी केंद्र सरकार के फैसले को चुनौती दी जा सकती है: (1) जब केंद्र सरकार और उपयुक्त अधिकारियों के बीच कोई पूर्ण और प्रभावी परामर्श का अभाव और, (2) निर्णय निराधार कारणों से लिया गया था। इन विचारों के तहत, न्यायालय को यह निर्णय लेना होगा कि क्या किसी दस्तावेज़ का खुलासा सार्वजनिक हित के विपरीत होगा।

वर्तमान मामले में, यह माना गया कि जो पत्र के माध्यम से चर्चा की थी वह कानून के तहत संरक्षित नहीं था। चूँकि यह न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण से संबंधित था, इसलिए इसे सार्वजनिक हित के लिए अत्यधिक महत्व वाला माना गया। न्यायालय ने माना कि एक लोकतांत्रिक सरकार जवाबदेही और आलोचना से बचने के लिए अपनी गतिविधियों को जनता से छिपाकर नहीं रख सकती है। न्यायालय ने “जानने का अधिकार जो भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में दिया गया है" को मान्यता देते हुए तर्क दिया कि: "जहां एक समाज ने लोकतंत्र को अपने मुख्य पथ के रूप में स्वीकार किया है, यह प्राथमिक चीज़ होना चाहिए कि नागरिकों को यह पता रहे कि उनकी सरकार क्या कर रही है।”

न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत स्वतंत्र भाषण और अभिव्यक्ति के अधिकार में दिए गए जानने के अधिकार के तहत पारदर्शी सरकार को परिभाषित किया।

न्यायालय ने प्रकटीकरण (Disclosure) के विषय में एक धारणा की पहचान की:

“सरकार की कार्यप्रणाली के संबंध में जानकारी का खुलासा एक नियम की तरह होना चाहिए। जानकारी की गोपनीयता केवल एक अपवाद के रूप में तभी उचित है जब इस जानकारी को सार्वजनिक हित के प्रति गोपनीय रखने की सख्त आवश्यकता हो। न्यायालय का दृष्टिकोण यह था कि सार्वजनिक हित की आवश्यकता के लिए इस गोपनीयता की संभावना का कम इस्तेमाल करना होना चाहिए। इसके साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रकटीकरण भी सार्वजनिक हित का एक महत्वपूर्ण पहलू है।”

manupatra

JUSTICE adda

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0051/1983

तथ्य

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा माननीय न्यायमूर्ति भगवती को संबोधित एक पत्र को संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका के रूप में माना। पत्र में याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया कि हरियाणा के फरीदाबाद में स्थित खदानों और पत्थर खदानों में बड़ी संख्या में बंधुआ मजदूर अमानवीय और असहनीय परिस्थितियों में काम करते हैं। इस याचिका में, खान अधिनियम 1952, बंधुआ मजदूर प्रणाली उन्मूलन अधिनियम 1976 (Bonded Labour System Abolition Act, 1976, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम सहित अन्य अधिनियमो के उचित कार्यान्वयन के लिए प्रार्थना की।

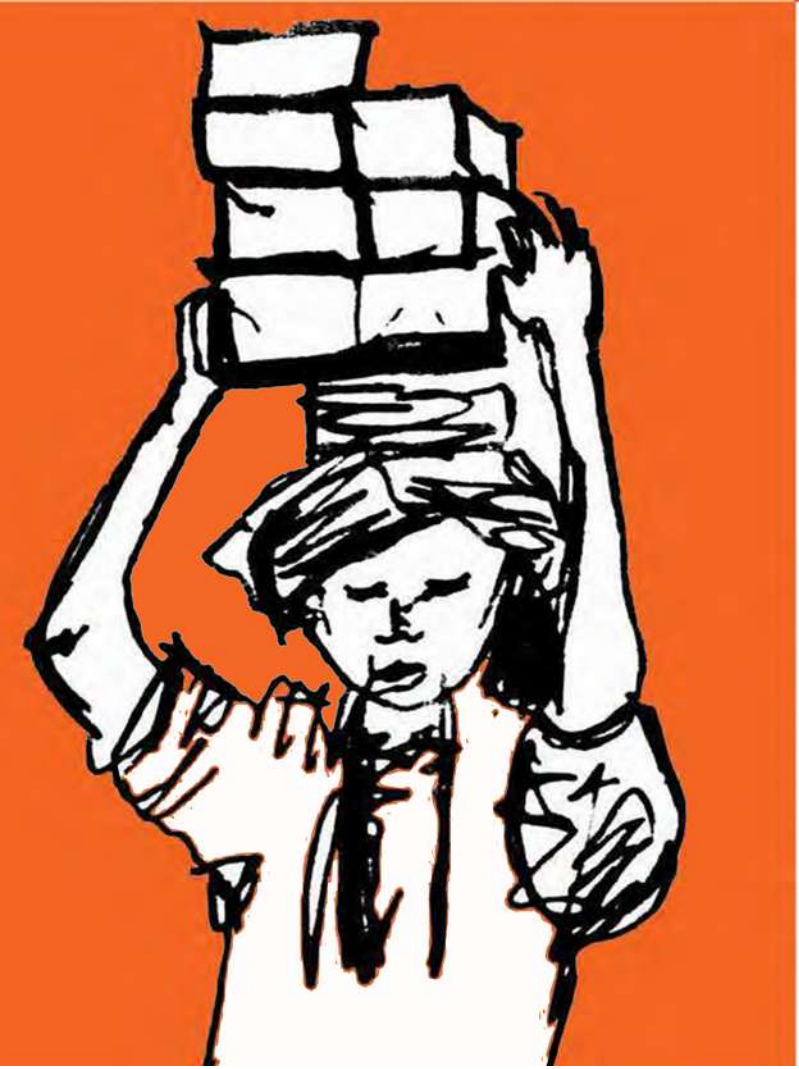

कानूनी प्रश्न

- क्या याचिका में उल्लिखित श्रमिकों के किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है, जिससे कि संविधान के अनुच्छेद 32 को आकर्षित किया जा सके?
- क्या किसी पक्ष द्वारा, इस न्यायालय को संबोधित पत्र को रिट याचिका माना जा सकता है?
- क्या जबरन मजदूरी कराना, बंधुआ मजदूरी प्रणाली उन्मूलन अधिनियम, 1976 के अंतर्गत आता है?

निर्णय

संविधान का अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीने का अधिकार प्रदान करता है। यह अपना अस्तित्व राज्य के नीति निदेशक तत्वों(Directive Principles of State Policy) और विशेष रूप से अनुच्छेद 39 के खंड (ई) व (एफ़), अनुच्छेद 41 और 42 से प्राप्त करता है। ये अधिकार मानव अस्तित्व के लिए मूलभूत हैं और मनुष्य के जीवन को सार्थक और जीने लायक बनाते हैं।

किसी व्यक्ति या समूह की सामाजिक और आर्थिक बाधा के कारण जनता का कोई भी सदस्य संविधान के अनुच्छेद 32 के खंड (1) के तहत न्यायालय जा सकता है।

जनहित याचिका, सरकार और उसके अधिकारियों के लिए समुदाय के वंचित और कमजोर वर्गों के लिए बुनियादी मानवाधिकारों को सार्थक बनाने और उन्हें सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने का एक अवसर है।

न्यायालय ने आगे कहा कि बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम 1976, जबरन मजदूरी को बंधुआ मजदूरी के एक रूप में मान्यता देता है। अधिनियम का जोर किसी भी प्रकार के जबरन मजदूरी को जारी रखने के खिलाफ है। जब भी किसी मजदूर से जबरन मजदूरी कराई जाती है, तो न्यायालय 'यह मानेगा कि उसे प्राप्त अग्रिम राशि या अन्य आर्थिक प्रतिफल के कारण ऐसा करना आवश्यक है और इसलिए वह एक बंधुआ मजदूर है।'

इसके अलावा न्यायालय ने माना कि केंद्र और राज्य सरकारें न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, मजदूरी भुगतान अधिनियम 1948, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम आदि जैसे अधिनियमों के प्रावधानों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि न्यायालय ने माना कि विभिन्न सामाजिक कल्याण कानूनों के तहत श्रमिकों को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित और जागरुक करना बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा ज्ञान उन्हें शोषण का पीड़ित बनने से रोकेगा और उन्हें अपनी बकाया राशि के लिए सुरक्षित तरीके से लड़ने के लिए सशक्त बनाएगा।

किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने की प्रक्रिया निर्धारित करने वाले कानून को अनुच्छेद 19 और 21 दोनों की जाँच पर खरा उतरना होगा।

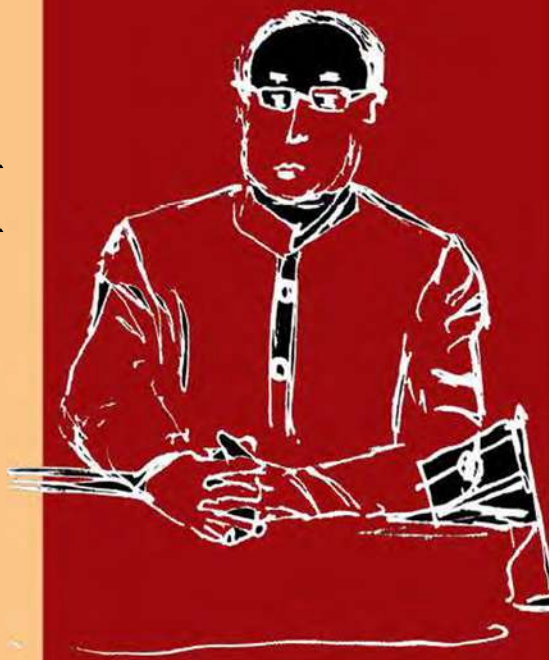

शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य

मनु/एस सी/0382/1983

तथ्य

याचिका विशेष रूप से पुलिस लॉकअप में महिला कैदियों की सुरक्षा और यातना और उनके प्रति हो रहे दुर्व्यवहार के खिलाफ थी। इस याचिका के माध्यम से कैदियों के कानूनी अधिकारों से संबंधित चर्चा भी करी गयी थी।

शीला बारसे, एक पत्रकार ने मुंबई पुलिस लॉकअप में 11 महिला कैदियों का साक्षात्कार लिया जहाँ 5 महिलाओं ने लॉकअप के भीतर हमले और यातना के मामलों के बारे में बात की थी। नतीजतन, शीला ने मुंबई पुलिस लॉकअप में महिला कैदियों के खिलाफ हिरासत में हिंसा की घटनाओं का उल्लेख करते हुए एक पत्र लिखा, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने एक रिट याचिका के रूप में स्वीकार किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने पत्र याचिका के आरोपों को सत्यापित करने के लिए बॉम्बे में कॉलेज ऑफ सोशल वर्क के डॉ. ए. आर. देसाई को बॉम्बे सेंट्रल जेल का दौरा करने और वहां की महिला कैदियों से पूछताछ करने का निर्देश दिया।

पत्र के तथ्यों की पुष्टि करते हुए देसाई की रिपोर्ट में महिला कैदियों के सामने आने वाली समस्याओं और कठिनाइयों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसने दो विदेशी राष्ट्रीय महिला कैदियों को एक वकील द्वारा ठगे जाने के एक विशेष घटना का भी वर्णन किया।

कानूनी प्रश्न

पत्र और रिपोर्ट दोनों में किए गए खुलासों के कारण न्यायालय ने इस मामले में भारतीय संविधान में गारंटीकृत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित सवालो को उत्तर देना महत्वपूर्ण पाया। यह सवाल ख़ास तौर पर उनके जीवन के अधिकार के प्रति था,जिन्हें दोषी या विचाराधीन कैदियों (Undertrial Prisoners) के रूप में कानूनी प्रणाली से बाहर कर दिया गया है।

निर्णय

न्यायालय ने कहा कि कैदियों को कानून तक पहुंच से वंचित करने से अनुच्छेद 14 में दी हुई समानता का अधिकार और अनुच्छेद 21 में संरक्षित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार खतरे में पड़ जाएगा।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "एक ऐसे कैदी की असहाय स्थिति की कल्पना करें जो जेल में बंद है । ये वो क़ैदी हैं जो नहीं जानते कि वह अपनी बेगुनाही को सही साबित करने या अपने संवैधानिक या कानूनी अधिकारों की रक्षा करने या यातना और व्यवहार या उत्पीड़न से खुद को बचाने के लिए किससे मदद मांग सकते हैं, जहाँ उसके संरक्षकों के हाथों उसका शोषण हो रहा हो। इसलिए यह बिल्कुल आवश्यक है कि जेलों में कैदियों को कानूनी सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए, चाहे वे विचाराधीन कैदी हों या दोषी ठहराए गए कैदी।

न्यायालय ने न केवल याचिका के तथ्यों को संबोधित किया, बल्कि पुरुषों और महिलाओं कैदियों दोनों को कानूनी सहायता प्रदान करने के व्यापक मुद्दे पर भी विचार किया और पूरे महाराष्ट्र राज्य के लिए दिशानिर्देश जारी किए। न्यायालय ने माना कि इस याचिका ने जेल में कैदियों को कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए एक तंत्र स्थापित करने की तत्काल आवश्यकता पर प्रकाश डाला और महाराष्ट्र राज्य कानूनी सहायता बोर्ड और जेल महानिरीक्षक को निम्नलिखित दिशानिर्देश दिए।

- **डेटा रखरखाव:** स्थानीय विधिक सहायता समिति को विचाराधीन कैदियों के प्रवेश की तारीख और अपराध में नामित पुरुष और महिला कैदियों की दो अलग-अलग सूचियों बना कर भेजना होगा। इसके अलावा उन क़ैदियों की सूची प्रस्तुत करना जो 15 दिनों से अधिक समय से जेल में बंद हैं जिनके द्वारा किए गये अपराधों में गिरफ्तारी वारंट की आवश्यकता नहीं है । (धारा 41, सीआरपीसी)

- **वकीलों को सुविधा:** संबंधित जिला विधिक सहायता प्राधिकरण द्वारा नामित वकीलों को उन कैदियों के साथ बातचीत के लिए सुगम मार्ग प्रदान करना, जिन्होंने विधिक सहायता की आवश्यकता व्यक्त की है। वकीलों को कैदियों के संबंध में अपेक्षित सारी जानकारी भी प्रदान करना ज़रूरी होगा।

- **कैदियों के लिए कानूनी जागरूकता:** जेल के चारों ओर नोटिस लगाना जिसमें मुलाकात के दिनों और कैदियों के लिए उपलब्ध वकीलों की सुविधाओं का विवरण हो। किसी भी कैदी को जो नामांकित वकीलों से मिलना चाहता है, उसे अनुमति दी जाये। इस बातचीत की निगरानी अधिकारी द्वारा केवल देखकर, न कि उसकी बातचीत को सुनकर की जाए।

- **दिशानिर्देशों का रखरखाव:** नामांकित वकीलों को जेलों में हर 15 दिनों में दौरों की योजना बनाने के लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का पालन किया जा रहा है, जिसमें जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार और कानूनी सहायता का अधिकार शामिल है।"

उपरोक्त दिशानिर्देश में न्यायालय द्वारा व्यक्त राय में कानूनी पेशे और इसके वास्तविक उद्देश्य के संबंध में यह तर्क जारी किए गए थे:

"वकीलों को यह जानना आवश्यक है कि कानून एक बनाई हुई सुखद जगह नहीं है जहां हम केवल विधायिका द्वारा बनाए गए नियमों की व्याख्या पर चर्चा करते हैं, बल्कि क़ानून एक ऐसा रास्ता है जिसमें से मानव लगातार अलग अलग पड़ावों में गुजरता है।"

न्यायालय ने पुलिस लॉकअप में महिला कैदियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न निर्देश जारी किए:

- महिला कैदियों के लिए अलग लॉकअप हो, जिसकी सुरक्षा महिला कांस्टेबलों द्वारा की जाएगी। इनकी संख्या तीन से बढ़ाकर पांच की जाएगी।
- महिला कैदियों से पूछताछ केवल महिला कांस्टेबल/पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में की जाएगी।
- एक जिला सत्र न्यायाधीश, यथासंभव एक महिला, जो कैदियों की शिकायतों को सुनने और संबोधित करने के लिए पुलिस लॉकअप में अप्रत्याशित निरीक्षण (Surprise Visit) करने के लिए नामित हो और पुलिस अधिकारियों की ओर से पाई गई किसी भी चूक को पुलिस आयुक्त के ध्यान में लेकर आये। यदि पुलिस आयुक्त इसके बावजूद यदि कार्य ना करे, तब सत्र न्यायाधीश गृह विभाग से संपर्क कर सकते हैं। यदि ऐसी कार्रवाई भी विफल हो जाती है, तो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से संपर्क किया जा सकता है।

गिरफ्तार व्यक्ति के लिए आचार व्यवहार के संबंध में निम्नलिखित दिशानिर्देश भी जारी किए गए थे:

- गिरफ्तारी पर, निकटतम विधिक सहायता समिति को गिरफ्तारी के बारे में सूचित किया जाना चाहिए और राज्य द्वारा सभी लागतों को वहन करते हुए गिरफ्तार व्यक्ति को आवश्यक कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए तत्काल कदम उठाए जाना चाहिए।
- गिरफ्तारी पर तुरंत गिरफ्तार व्यक्ति से उसके परिवार के किसी सदस्य या मित्र का नाम प्राप्त किया जाना चाहिए, जिसे वह गिरफ्तारी के बारे में सूचित करना चाहते हैं ।
- जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को पेश किया जाता है, उसे हिरासत में किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार के बारे में पूछताछ करना चाहिए । इसके अलावा गिरफ़्तार व्यक्ति को सीआरपीसी की धारा 54 के तहत अधिकार के बारे में सूचित करना चाहिए, जिसके अंतर्गत गिरफ्तार व्यक्ति के अनुरोध पर उसके खिलाफ हुए दुर्व्यवहार जानने के लिए परीक्षण का प्रावधान है।

ओल्गा टेलिस और अन्य बनाम बॉम्बे म्युनिसीपल कॉर्पोरेशन

मनु/एस सी/0039/1985

तथ्य

यह मामला एक बड़े महानगरीय शहर बॉम्बे के फुटपाथ और झुग्गी में निवास करने वाले लोगों की दुर्दशा से संबंधित है। एक पत्रकार ओल्गा टेलिस और दो फुटपाथ निवासियों द्वारा एक रिट याचिका दायर की गई थी, जब झुग्गी और फुटपाथ निवासियों को बेदखल करने और निर्वासित करने का आदेश महाराष्ट्र सरकार ने बॉम्बे नगरपालिका अधिनियम 1888 के अंतर्गत दिया। याचिकाकर्ताओं का दूसरा समूह, जिनकी याचिका पर इस याचिका के साथ सुनवाई हुई थी, दो अलग-अलग झुग्गियों से था और उन्होंने बताया कि उन्होंने न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा का आदेश (Order of Injunction) प्राप्त किया था । इस समूह ने आरोप लगाया इस निषेधाज्ञा के बावजूद राज्य सरकार के अधिकारी द्वारा उन्हें उनकी बस्ती के स्थान से निर्वासित करने के प्रयास किए गए थे।

कानूनी प्रश्न

- क्या अनुच्छेद 32 के दायरे में, मौलिक अधिकारों के खिलाफ विबंध(Estoppel) प्राप्त किया जा सकता है?
- क्या जबरन बेदखली और उनकी बस्तियों को उखाड़ फेंकना झुग्गियों में रहने वालों को उनकी आजीविका और परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के अधिकार से वंचित करता है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ई) और अनुच्छेद 19(1)(जी) में दिए गए उनके कब्जे और बसने के अधिकार का उल्लंघन है?

- क्या बॉम्बे नगर निगम अधिनियम की धारा 312 और 313 के साथ यदि धारा 314 में निर्धारित कानून को साथ पढ़ा जाये, जो नगर आयुक्त को बिना किसी सूचना के किसी भी सड़क पर स्थापित किसी भी वस्तु या संरचना को हटाने का अधिकार देता है, उचित, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण है?

निर्णय

न्यायालय ने निर्धारित किया कि यह याचिकाएं अनुच्छेद 32 के तहत वैध थीं, जो किसी को मौलिक अधिकार के उल्लंघन के मामले में सीधे सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का अधिकार देता है और संविधान के खिलाफ कोई विबंध जारी नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि:

“कोई भी व्यक्ति संविधान द्वारा दी गयी स्वतंत्रताओं का आदान-प्रदान नहीं कर सकता है। किसी एक कार्यवाही में उसके द्वारा खुद के मौलिक अधिकार के सम्बन्ध में दी गई रियायत, चाहे वह कानून की गलती के तहत हो या किसी और अन्य कारण से हुई हो, उसे आगे जाकर किसी दूसरी कार्यवाही में मौलिक अधिकारों के लाभों में विबंध लगाकर वंचित नहीं कर सकता। यदि इस तरह की रियायत लागू की जाती है, तो यह संविधान के उद्देश्य को विफल कर देगी।”

न्यायालय के समक्ष अगला प्रश्न भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से संबंधित किया , जिसमें लिखा है: ‘किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।’ यह विवाद कि क्या जीवन जीने के अधिकार के अर्थ में आजीविका का अधिकार भी शामिल है, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि आजीविका के साधन सुनिश्चित किए बिना जीवन का अधिकार अर्थहीन होगा। न्यायालय ने आगे कहा कि:

“कोई भी व्यक्ति आजीविका के साधनों के बिना नहीं रह सकता है। यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के संवैधानिक अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता है, तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित करने का सबसे आसान तरीका उसे उसकी आजीविका के साधनों से वंचित करना होगा। इस तरह का अभाव न केवल जीवन में संतुष्टि और सार्थकता को नकार देगा, बल्कि यह जीवन को असंभव बना देगा। हालाँकि इस तरह के अभाव यदि विधि द्वारा द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by Law) के अनुसार होता है तो वह आजीविका को जीवन के अधिकार के मौलिक अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता है।”

फुटपाथ और झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों की दुर्दशा और आर्थिक मजबूरियों को ध्यान में रखते हुए, जो उन्हें दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर करते हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि बॉम्बे नगर निगम अधिनियम 1888 द्वारा अनुच्छेद 19(1)(जी) में दिए किसी भी व्यवसाय या पेशे के अधिकार के साथ-साथ अनुच्छेद 19(1)(ई) बसने के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, क्योंकि उन्हें उनके आवास से किसी भी प्रकार से बेदखल करना , उनके व्यवसाय और रहने के मौलिक अधिकार में दिक्कतें पैदा करेगी। न्यायालय ने आगे कहा कि:

“यदि नागरिकों को आजीविका का पर्याप्त साधन देना और काम करने का अधिकार सुनिश्चित करने का दायित्व राज्य पर है, तो आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार(अनुच्छेद 21) के दायरे से बाहर करना सरासर लापरवाही होगी।”

अनुच्छेद 21 के दूसरे भाग पर आते हुए 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के संबंध में , न्यायालय ने माना कि धारा 314 वास्तव में एक वैध कानून था और किसी भी तरह से अनुचित नहीं था क्योंकि यह प्रावधान का इस्तेमाल अनिवार्य (Mandatory) नहीं था। इसमें अधिकारी को केवल आवश्यकता पड़ने पर ही सड़क पर स्थापित किसी भी वस्तु को बिना सूचना दिए ध्वस्त करने का अधिकार था ।

हालाँकि, न्यायालय ने यह भी उल्लिखित किया कि ऐसी 'आवश्यकता' का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए और यह केवल तभी प्रयोग किया जाना चाहिए जब कोई अन्य विकल्प उपलब्ध न हो। मौजूदा मामले में, न्यायालय ने कहा कि फुटपाथ पर रहने वालों को 'सुनने का अधिकार' (Right to be Heard) दिया जाना चाहिए, यानी बेदखली से पहले नोटिस दिया जाना चाहिए। इस तर्क में न्यायालय ने फुटपाथ पर रहने वालों को एक महीने के नोटिस के साथ वैकल्पिक निवास के प्रस्ताव के साथ बेदखली का आदेश पारित किया।

मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम और अन्य

मनु/एस सी/0194/1985

तथ्य

इस मामले में अपीलकर्ता की शादी वर्ष 1932 में प्रतिवादी (Respondent) से हुई थी। अपीलकर्ता ने वर्ष 1975 में, प्रतिवादी पत्नी को घर से बाहर निकाल दिया। प्रतिवादी ने वर्ष 1978 में भरण-पोषण के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता (CrPC) की धारा 125 के तहत एक याचिका दायर की। उसी वर्ष, अपीलकर्ता ने प्रतिवादी को अपरिवर्तनीय तलाक (Irrevocable Divorce) दे दिया और बचाव में कहा कि चूंकि अब वह उसकी पत्नी नहीं है और उसने पहले ही इद्दत की अवधि के दौरान मेहर का भुगतान कर दिया था, जैसा कि मुस्लिम पर्सनल कानून के तहत आवश्यक है इसके लिए अब वह उसे भरण-पोषण देने के लिए बाधित नहीं है।

वर्ष 1979 में मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता को 25 रुपये की मामूली राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया। उच्च न्यायालय ने इस राशि को बढ़ाकर रु. 179.20 प्रति माह. कर दिया । इसके खिलाफ अपीलकर्ता (पति) ने एक विशेष रिट याचिका के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय में अपील की।

कानूनी प्रश्न

न्यायालय के सामने यह सवाल आया कि क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता (CrPC) की धारा 125 के प्रावधानों को पक्षों (Parties) को नियंत्रित करने वाले व्यक्तिगत कानून (Personal Laws) के प्रावधानों की जगह लागू करने में प्राथमिकता दी जा सकती है ? इस मामले में दूसरा सवाल आया कि समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) की दिशा में कदम उठाने में न्यायालय क्या भूमिका निभाती हैं, जब संविधान का अनुच्छेद 44, प्रत्येक नागरिक को नियंत्रित के लिए समान नागरिक संहिता कानूनों द्वारा व्यक्तिगत कानूनों की जगह लेने की कल्पना करता है ?

निर्णय

न्यायालय ने माना कि “आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 125 की ‘प्रवृति वास्तव में धर्मनिरपेक्ष’ है और इस प्रावधान का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि उन व्यक्तियों के लिए त्वरित (Speedy) और संक्षिप्त विचारण (Summary Trial) हो जिनके पास खुद का पोषण करने के साधन नहीं थे।” न्यायालय ने आगे कहा कि यदि पर्याप्त साधन वाला व्यक्ति किसी आश्रित को भरण-पोषण देने में लापरवाही करता पाया गया, तो सीआरपीसी की धारा 125 लागू होगी। इस प्रावधानों के तहत अधिकार पक्षों के पर्सनल कानूनों (Personal law) की परवाह किए बिना बने रहेंगे। न्यायालय ने यह भी माना कि भरण-पोषण प्रदान करने के लिए पति का दायित्व, इद्दत की समयावधि समाप्त तक ही सीमित नहीं था, बल्कि तब तक रहता है जब तक पत्नी अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है या जब तक वह दूसरा विवाह नहीं कर लेती है।

समान नागरिक संहिता(UCC) के महत्व पर न्यायालय ने कहा,

“समान नागरिक संहिता सभी नागरिकों में अपने व्यक्तिगत कानूनों के प्रति निष्ठा हटाकर राष्ट्रीय एकता के उद्देश्य में मदद करेगी। कोई भी समुदाय इस मुद्दे पर अनावश्यक रियायतें (Gratuitous Concessions) देकर बड़े संकट का सामना नहीं करना चाहेगा । यह कर्तव्य राज्य पर लगाया गया है कि वह देश के नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करे और निस्संदेह, ऐसा करने के लिए उसके पास विधायी क्षमता (Legislative Competence) है। हम विभिन्न धर्मों और विचारधाराओं के व्यक्तियों को एक मंच पर लाने में आने वाली कठिनाइयों को समझते हैं लेकिन, संविधान की खातिर एक शुरुआत तो करनी ही होगी। अनिवार्य रूप से, सुधारक की भूमिका न्यायालयों को ही निभानी होगी क्योंकि, जब जब अन्याय बहुत स्पष्ट पैमाने पर होने देना, आम आदमी की सहनशक्ति के खिलाफ हो सकता है। लेकिन न्यायालयों के अलग-अलग प्रयास पर्सनल कानूनों के बीच अंतर को कम करना समान नागरिक संहिता की जगह नहीं ले सकते। सभी को न्याय देना, हर मामले में न्याय देने की तुलना में अधिक संतोषजनक तरीका है।”

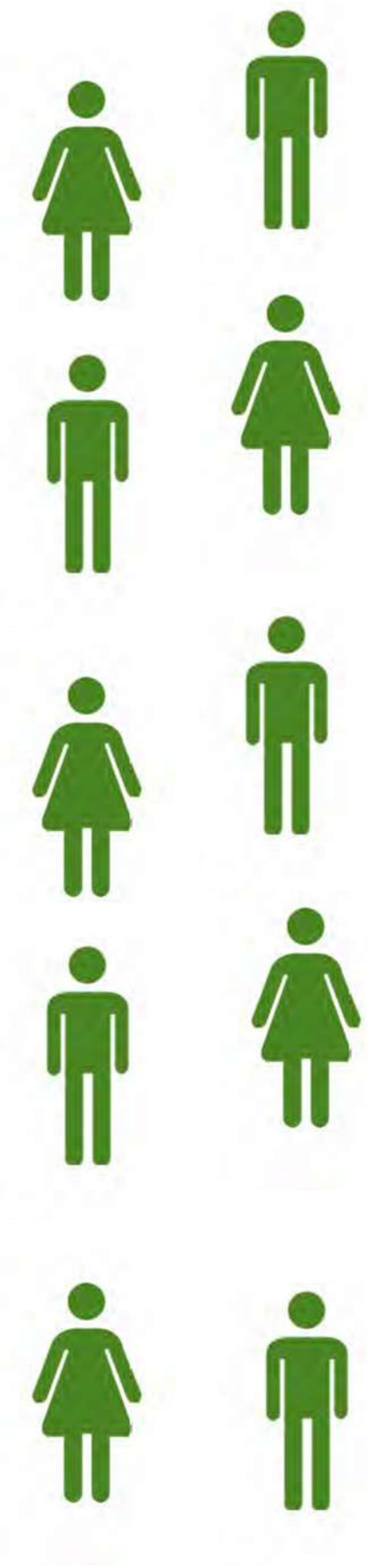

रूरल लिटिगेशन एंड एंटाइटलमेंट केंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

मनु/एस सी/0043/1985 और मनु/एस सी/0111/1986

तथ्य

वर्तमान मामले में, न्यायालय ने याचिकाकर्ता से प्राप्त एक पत्र को रिट याचिका के रूप में माना। पत्र में याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया कि मसूरी की पहाड़ियों और उसके आसपास चूना पत्थर के खनन से क्षेत्र की पारिस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, पर्यावरणीय अव्यवस्था और बारहमासी जल के झरने प्रभावित हो रहे हैं।

कानूनी प्रश्न

न्यायालय ने अपने फैसले में संरक्षण और विकास के दोहरे लक्ष्यों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश की।

निर्णय

न्यायालय ने यह कहकर इस मामले के महत्व को स्वीकार किया कि,
“यह विकास और संरक्षण के बीच संघर्ष को स्पष्ट रूप से उजागर करता है और देश के व्यापक हित में दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देता है।”

इस मामले में कई चीज़ें निर्धारित करने के लिए न्यायालय ने भार्गव समिति की नियुक्ति की। इन चीज़ों में मुख्य सवाल थे कि क्या खान अधिनियम, 1952 (Mines Act, 1952) में निर्धारित सुरक्षा मानकों और खान नियमों का पालन किया जा रहा है ? क्या खनन जारी रखने से भूस्खलन का कोई खतरा है या व्यक्तियों, मवेशियों या कृषि भूमि को कोई खतरा है? समिति ने अपनी रिपोर्ट में चूनापत्थर की खदानों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, अर्थात् श्रेणी ए, बी और सी, श्रेणी ए की खदानें सबसे कम और श्रेणी सी की खदानें सबसे प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

रिपोर्टों के तुलनात्मक विश्लेषण के बाद न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश दिए:

- भार्गव समिति की रिपोर्ट में श्रेणी -सी में वर्गीकृत चूनापत्थर खदानों को बंद किया जाना चाहिए। खनन कार्यों को जारी रखने की अनुमति देने वाला न्यायालय का कोई भी आदेश रद्द कर दिया। इसके अलावा इन चूना पत्थर खदानों के संबंध में मौजूदा पट्टे को समाप्त कर दिया जाएगा और उत्तर प्रदेश राज्य के प्रति खदान मालिकों की कोई भी जिम्मेदारी नहीं रहेगी।
- भार्गव समिति की रिपोर्ट की श्रेणी ए या संबंधित कार्य समूह रिपोर्ट (Working Group Report) की श्रेणी I में वर्गीकृत चूनापत्थर खदानों को दो वर्गों में विभाजित किया जाना चाहिए; एक वर्ग में वे शामिल हैं जो मसूरी शहर की सीमा के भीतर हैं और दूसरे में वे शामिल हैं जो शहर की सीमा के बाहर हैं।
- मसूरी शहर की सीमा से बाहर आने वाली चूना पत्थर की खदानों को खान अधिनियम, 1952 , धातु खान विनियम, 1961 (the Metalliferous Mines Regulations,1961) या किसी भी अन्य कानून या नियम की आवश्यकताओं के पालन के अधीन संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

- चूना पत्थर खदानों के पट्टेदारों को होने वाले आर्थिक लाभ से अधिक लोगों के कल्याण को प्राथमिकता देते हुए, न्यायालय ने कहा: “इससे निस्संदेह खननकर्ताओं को कठिनाई होगी, लेकिन यह एक ऐसी कीमत है जो पारिस्थितिक संतुलन के साथ स्वस्थ वातावरण में रहने के लोगों के अधिकार की रक्षा और सुरक्षा के लिए और उनके और उनके मवेशियों, कृषि भूमि और हवा, पानी और पर्यावरण की शुद्धता के प्रति कम से कम खतरे में पड़े बिना चुकाई जानी है।”

हालाँकि न्यायालय ने चूना पत्थर खदानों के पट्टेदारों के प्रति कुछ हद तक संवेदनशीलता दिखाई और यह जानते हुए कि आदेश के परिणामस्वरूप, बंद की जाने वाली खदानों में कार्यरत श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे। इस संबंध में, न्यायालय ने भारत सरकार और उत्तर प्रदेश राज्य को निर्देश दिया कि जब भी राज्य में किसी अन्य क्षेत्र को भविष्य में चूना पत्थर के अनुदान के लिए खुला रखा जाए, तो इस आदेश के परिणामस्वरूप विस्थापित होने वाले पट्टेदारों को अनुदान में प्राथमिकता दी जाएगी।

जो क्षेत्र अब खनन कार्यों के अधीन नहीं हैं उसमे वनरोपण और मिट्टी संरक्षण कार्यक्रमों का प्रस्ताव करने के अलावा न्यायालय ने अनुच्छेद 51ए को लागू किया जिसमें कहा गया है कि पर्यावरण का संरक्षण नागरिकों का मौलिक कर्तव्य है।
न्यायालय ने आगे कहा कि:

“पर्यावरण का संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन (Ecological Balance) को अप्रभावित रखना एक ऐसा कार्य है जिसे न केवल सरकार बल्कि प्रत्येक नागरिक को भी करना चाहिए। यह एक सामाजिक दायित्व और प्रत्येक भारतीय नागरिक को याद दिलाया जाता है कि यह उसका मौलिक कर्तव्य है जैसा कि अनुच्छेद 51ए(जी) में निहित है।”

मैरी रॉय बनाम केरल राज्य

मनु/एस सी/0716/1986

तथ्य

याचिकाकर्ता ने अपने स्वयं के अनुभव से प्रेरित होकर त्रावणकोर के सीरियाई ईसाई समुदाय की महिलाओं को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के दायरे में लाकर उनके लिए विरासत के समान अधिकार हासिल करने की मांग की।

संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर याचिका में कहा गया है कि त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम, 1092 की धारा 24, 28 और 29 महिलाओं के साथ भेदभाव करते हैं, जिससे अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटीकृत समानता के उनके संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन होता है।

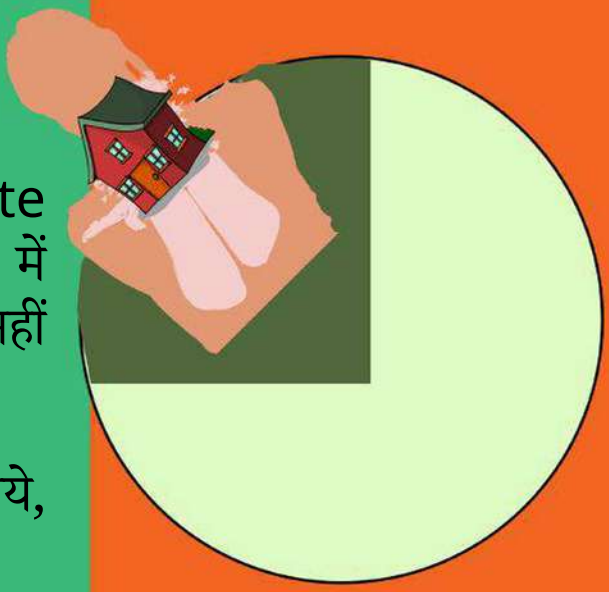

- एक बेटी को निर्वसीयत संपत्ति (Intestate will; जहाँ मरने के समय विल नहीं होती है) में बेटे के समान उत्तराधिकारी होने की हकदार नहीं थी ।
- वह बेटे के हिस्से का एक-चौथाई या 5000 रुपये, जो भी कम हो, पाने की हकदार थी।
- यदि बेटी को 'स्त्रीधन' देने का वादा निर्वसीयत, या उसकी पत्नी, पति या उनके उत्तराधिकारियों द्वारा किया गया था, तो ऐसी स्थिति में वह किसी भी चीज़ की हकदार नहीं थी।

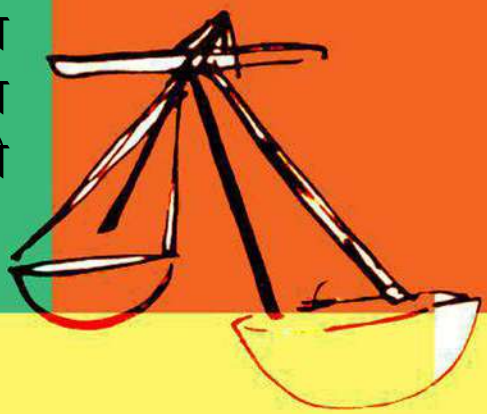

कानूनी प्रश्न

- क्या त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम, 1092 के प्रावधान संविधान के प्रावधानों के परे (Ultra Vires) थे?
- क्या भाग-बी राज्य (कानून) अधिनियम, 1951 के अधिनियम के साथ, निर्वसीयत उत्तराधिकार को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 या त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम, 1092 द्वारा शासित किया जाना था?

निर्णय

इस केस में उल्लिखित कानून के इतिहास का पता लगाते हुए, जो कि त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम, 1092 है, न्यायालय ने कहा कि 1949 से पहले 1092 अधिनियम त्रावणकोर रियासत में भारतीय ईसाई समुदाय के सदस्यों की संपत्ति पर निर्वसीयत उत्तराधिकार को नियंत्रित करता था। हालांकि, 1949 के बाद, त्रावणकोर राज्य और कोच्चि राज्य के विलय के साथ त्रावणकोर-कोच्चि राज्य के गठन के साथ, संसद ने भाग-बी राज्य कानून अधिनियम लागू किया।

भाग-बी राज्य (कानून) अधिनियम ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 को भाग-बी के सभी राज्यों में लागू करने का आह्वान किया। न्यायालय ने यह मानते हुए मामले का फैसला किया कि भाग-बी राज्य (कानून) अधिनियम ने त्रावणकोर अधिनियम के संचालन को बाहर कर दिया था। इस तरह अधिनियम की संवैधानिकता के पहले प्रश्न की जांच करने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया।

न्यायालय ने स्थापित किया कि केरल राज्य के त्रावणकोर क्षेत्र के ईसाइयों के बीच निर्वसीयत उत्तराधिकार के लिए 1 अप्रैल, 1951 से लागू कानून भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 है। इसके बाद, केरल उच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि कोचीन ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम, 1921 को भी भाग बी राज्य (कानून) अधिनियम, 1951 के द्वारा निरस्त कर दिया गया था।

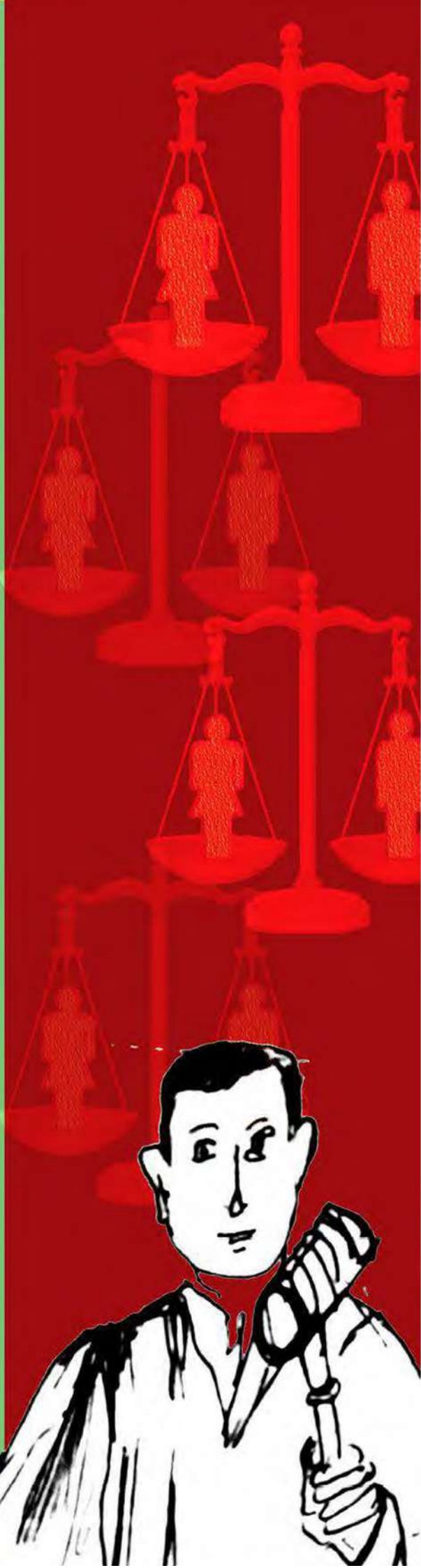

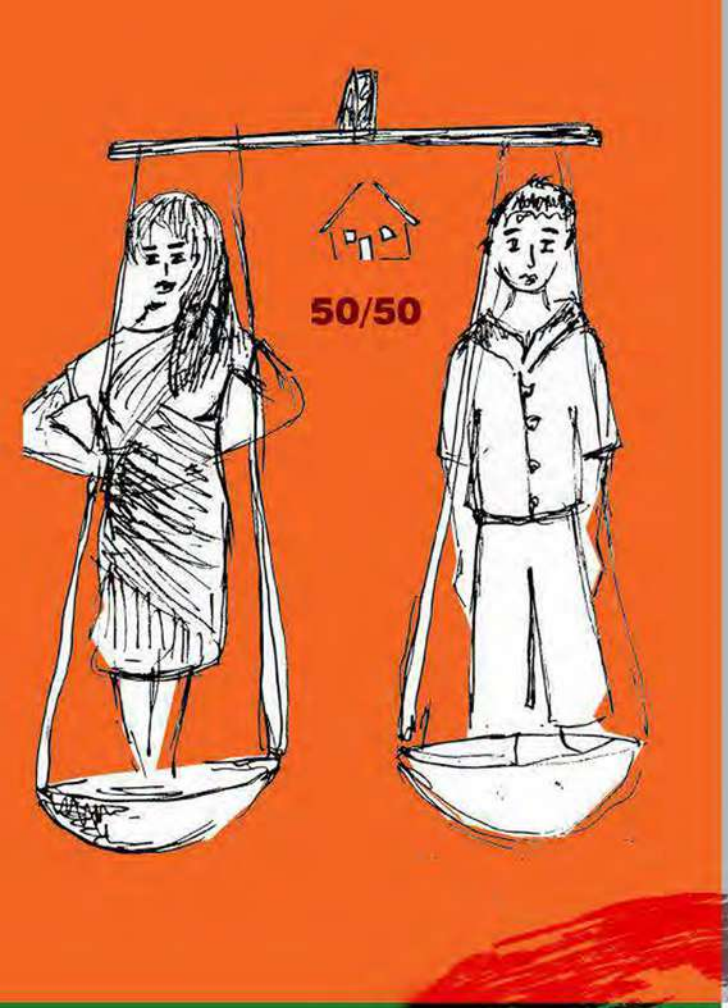

सर्वोच्च न्यायालय ने सीरियाई ईसाई महिलाओं को उनके पिता की संपत्ति में बराबर का हिस्सा देने का अधिकार दिया। इससे उन्हें शेष भारत में ईसाई समुदाय के सदस्यों के समान अधिकार प्राप्त हुए जो भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 द्वारा शासित थे।

इस निर्णय के माध्यम से पूरे भारत में ईसाइयों को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 द्वारा शासित किया गया, जिसमें प्रावधान था कि निर्वसीयत संपत्ति (Intestate Property) को लड़के और लड़की के बीच समान रूप से अधिकार वितरित दिया जाएगा।

इंद्रा साहनी और अन्य बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/01 04/1993

तथ्य

स्वतंत्रता के बाद से, भारत सरकार ने सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) को संस्थागत बनाने और संविधान में दिए मूल्यों को साकार करने के लिए प्रथम और द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग बनाने के रूप में कदम उठाये। इसके अलावा सरकार ने 27% आरक्षण के संबंध में मंडल आयोग की सिफारिशों जैसे केंद्र सरकारों और कार्यालयों में नौकरियों के लिए 27% आरक्षण को लागू कर कदम उठाये।

मंडल कमीशन के लागू होते ही देश भर में विरोध शुरू हुआ जिसमें कई जगह विद्यार्थियों द्वारा दंगे और फसाद किये गए।

इन परिस्थिति को देख कर सर्वोच्च न्यायालय ने देश में पड़े सभी मुक़दमों को अपने पास स्थानांतरित कर दिया ।

कानूनी प्रश्न

- संविधान के अनुच्छेद 16(1) और 16(4) के बीच अंतर-संबंध, इसका दायरा, और सीमा क्या है ?
- 'पिछड़े वर्ग के नागरिकों' शब्द के अर्थ पर स्पष्टता की आवश्यकता ।
- इसकी पहचान के मापदंड क्या है ?
- उपलब्ध आरक्षण की प्रकृति और सीमा क्या होनी चाहिए?

निर्णय

न्यायाधीशों की पीठ की राय थी कि अनुच्छेद 16(4), अनुच्छेद 16(1) का अपवाद नहीं है। न्यायाधीशों के बहुमत का विचार था कि, अनुच्छेद 16(4) आरक्षण की पूरी अवधारणा के लिए महत्वपूर्ण था।

न्यायालय के समक्ष अगला कार्य 'पिछड़े वर्ग के नागरिकों' शब्द से जुड़ा था। न्यायालय ने कहा कि भर्ती के प्रारंभिक चरण में, पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में आरक्षण दिया जा सकता है। लेकिन एक बार जब वे सेवा में प्रवेश करते हैं, तो प्रशासन की दक्षता की मांग होती है कि ये सदस्य भी दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करें और अन्य सभी की तरह पदोन्नति अर्जित करें । इसके बाद कोई और भेद नहीं किया जा सकता। किसी के करियर के दौरान उसे अतिरिक्त सकारात्मक समर्थन नहीं दिया जाना चाहिए। यह न तो प्रशासन की दक्षता के हित में होगा और न ही राष्ट्र के व्यापक हित में होगा।

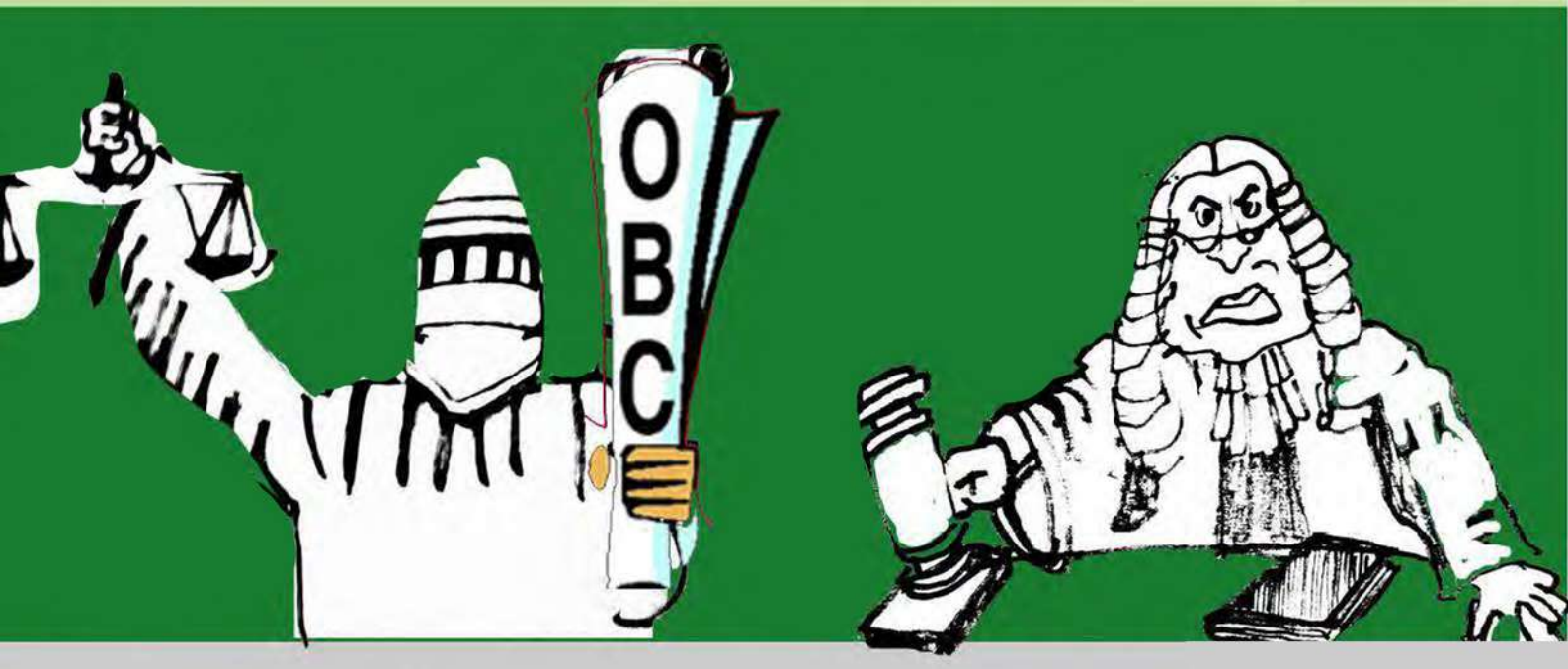

इसके बाद न्यायालय ने 'पिछड़े वर्ग के नागरिकों' की पहचान के मानदंडों का निर्धारण करना शुरू किया। उन सभी याचिकाकर्ताओं को स्वीकार करते हुए जिन्होंने आरोप लगाया था कि नियमित मानदंडों के कारण पिछड़े वर्ग के भीतर आने वालों में ऐसे लोग हैं जो आर्थिक रूप से उन्नत हैं और आरक्षण नीतियों का अनुचित लाभ उठा रहे है। न्यायालय ने 'आर्थिक परीक्षण' करना शुरू किया और क्रीमी लेयर सिद्धांत विकसित की जिसमें कहा था कि:

"इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए, हम भारत सरकार को आदेश देते हैं कि आरक्षण की नीतियों का अनुचित लाभ बचने के लिए आय, भूमि का स्वामित्व या 'क्रीमी लेयर' के आधार पर हो। यह करने में चार महीने से अधिक महीने नहीं लगाए जाने चाहिए । यदि इन मापदंडो में कोई व्यक्ति खरा नहीं उतरता है तो वह अनुच्छेद 16(4) के अंदर दिए गए 'अन्य पिछड़े वर्गों' के दायरे में आने वाले समूह के सदस्य नहीं रहेंगे।

अन्य पिछड़ा वर्ग (ओ. बी. सी.) के भीतर उप-वर्गीकरण:

"यदि अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्गों को एक साथ जोड़ा जाता है, तो अन्य पिछड़े वर्ग अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की सभी नौकरियों और जगह को ले जाएंगे । यही तर्क पिछड़े वर्ग में अधिक पिछड़े और पिछड़े के बीच वर्गीकरण के बारे में भी लग सकता है जहाँ कई पिछड़े अधिक पिछड़ों के सारे अवसर ले सकते हैं । हम यह मानते हैं कि यदि कोई राज्य ऐसा करने का विकल्प चुनता है जहाँ वह सभी समूह को एक जैसा मानता हो, तो यह कानून में मान्य नहीं होगा।"

न्यायालय ने यह निर्धारित करते हुए कि आरक्षण एक शुरू में दिया जाने वाला समर्थन जैसा होना चाहिए जो पदोन्नति तक विस्तारित नहीं है, और कहा कि,
आरक्षण योग्यता के विरोधी (Anti-meritorious) नहीं है। "यह निर्विवाद है कि प्रकृति ने पिछड़े वर्गों के सदस्यों को उतनी ही योग्यता प्रदान की है जितनी उसने अन्य वर्गों के सदस्यों को दी है। इसे साबित करने के लिए केवल एक अवसर की आवश्यकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि आरक्षण योग्यता विरोधी है ।

आवंटित आरक्षण 50% से अधिक नहीं होना चाहिए, लेकिन, असाधारण स्थितियों में अत्यधिक सावधानी के साथ इस नियम में कुछ छूट दी जा सकती है।"

उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य

मनु/एस सी/0333/1993

तथ्य

इस मामले में कुछ निजी पेशेवर जो शिक्षण सुविधा प्रदान करते है उन्होंने शिक्षण संस्थानों द्वारा ली जाने वाली केपिटैषण फीस(Capitation Fees) को नियंत्रित करने वाले कानूनों की संवैधानिकता को चुनौती दी गई थी।

कानूनी प्रश्न

- क्या अनुच्छेद 21 में निहित जीवन जीने के अधिकार में शिक्षा का अधिकार शामिल है ?
- क्या अनुच्छेद 21 के तहत शिक्षा के मौलिक अधिकार में पेशेवर डिग्री की प्राप्ति भी आती है ?

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बुनियादी शिक्षा का अधिकार जीवन के मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 21) में निहित है, जब इसे शिक्षा पर निर्देश सिद्धांत (अनुच्छेद 41) के साथ जोड़ा जाता है।

न्यायालय ने माना कि अधिकार के मापदंडों को राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिसमें अनुच्छेद 45 भी शामिल है जो यह प्रावधान करता है कि राज्य को संविधान के प्रारंभ से दस साल की अवधि के भीतर 14 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करना है।

न्यायालय ने फैसला सुनाया कि अनुच्छेद 21 के तहत पेशेवर डिग्री के लिए शिक्षा का कोई मौलिक अधिकार नहीं है । हालांकि, यह माना गया कि संविधान के लागू होने के बाद से 44 साल बीतने के बाद जाकर इस कानून ने 14 वर्ष के आयु से कम बच्चों की शिक्षा के गैर-न्यायसंगत अधिकार को मौलिक अधिकार में प्रभावी ढंग से बदल दिया गया है। यह कहा,

“मुफ्त शिक्षा का अधिकार केवल 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक बच्चों के लिए उपलब्ध है। इसके बाद, शिक्षा प्रदान करने का राज्य का दायित्व राज्य की आर्थिक क्षमता और विकास की सीमा के अधीन है।”

इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि किसी अधिकार को मौलिक अधिकार मानने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इसे संविधान के भाग III में स्पष्ट रूप से लिखा जाए चूँकि 'भाग III और भाग IV के प्रावधान एक दूसरे के पूरक हैं।'

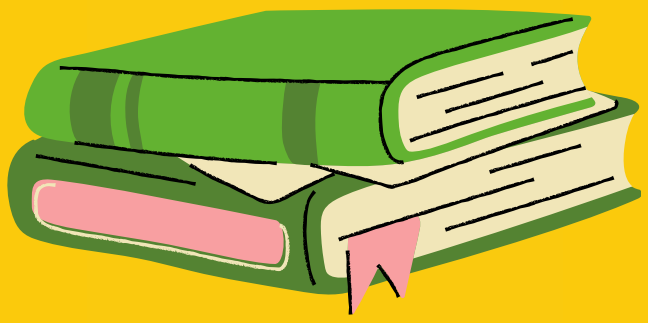

न्यायालय ने इस बात को खारिज कर दिया कि भाग III (मौलिक अधिकार) के प्रावधानों में दिए गए अधिकार भाग IV (निर्देशात्मक सिद्धांत) के प्रावधानों में दिए गए नैतिक दावों और आकांक्षाओं से श्रेष्ठ हैं।

इस निर्णय का महत्व

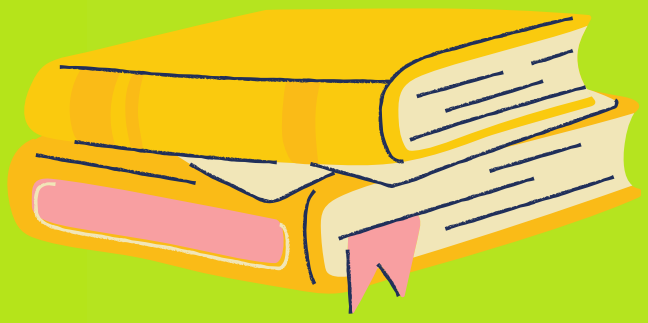

राज्य ने नौ साल बाद संविधान में 86वें संशोधन, 2002 के माध्यम से अनुच्छेद 21-ए को शामिल करके इस निर्णय का जवाब दिया। यह अनुच्छेद छह से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करता है।

एस.आर.बोम्मई बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0444/1994

तथ्य

1985: श्री एस.आर. बोम्मई के नेतृत्व में जनता दल कर्नाटक राज्य में सत्ता में आया

1989: कई व्यक्ति सत्ताधारी दल से अलग हो गए

20 अप्रैल: दलबदल करने वाले 7 लोगों ने राज्यपाल को पत्र लिखकर श्री बोम्मई के लिए अपना समर्थन दोहराया।

1992: राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद, राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन को लागू किया गया और बोम्मई सरकार को बर्खास्त कर दिया गया। इसके साथ ही राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश राज्यों की विधानसभाओं को भंग कर दिया गया।

जारी की गई इस घोषणा की वैधता को चुनौती देते हुए याचिकाएं दायर की गई थीं। सर्वोच्च न्यायालय ने सभी याचिकाओं को एक साथ सुना।

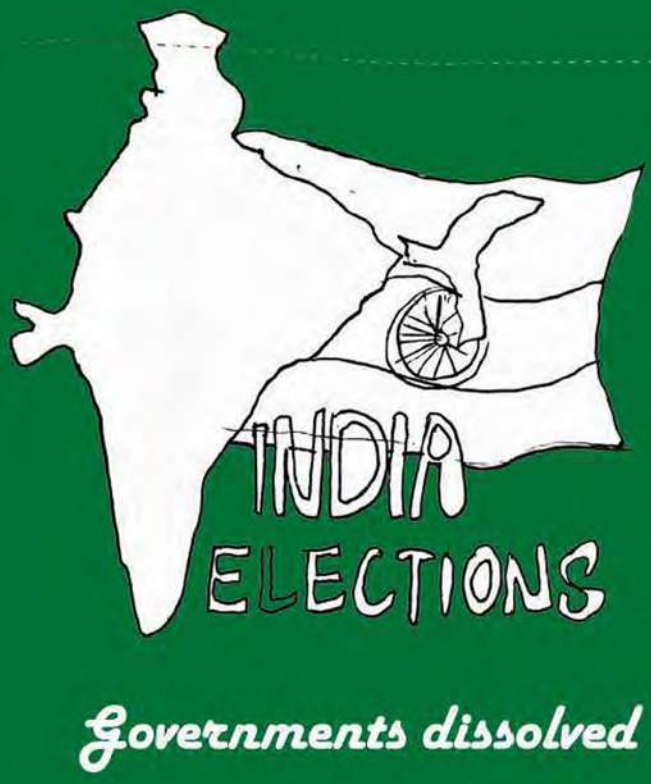

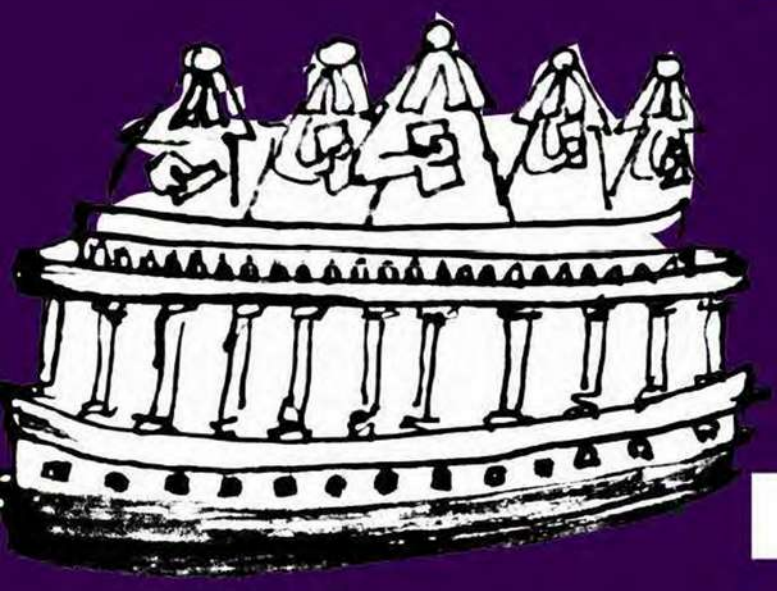

कानूनी प्रश्न

- क्या अनुच्छेद 356 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन की राष्ट्रपति की उद्घोषणा (Presidential Proclamation) को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है?
- क्या राष्ट्रपति के पास संविधान के अनुच्छेद 356(1) के तहत घोषणा जारी करने की निरंकुश शक्ति है?
- यदि इस उद्घोषणा को अमान्य कर दिया जाए तो क्या राष्ट्रपति द्वारा भंग की गई विधानसभाओं को पुनर्जीवित किया जा सकता है ??

- क्या अनुच्छेद 356(1) के तहत जारी की गई घोषणा की वैधता को अनुच्छेद 356(3) के तहत संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद भी चुनौती दी जा सकती है?
- क्या न्यायालय नए चुनाव कराने के खिलाफ अंतरिम रोक लगा सकती है?

निर्णय

यह माना गया कि राष्ट्रपति की घोषणा यदि दुर्भावनापूर्ण या पूरी तरह से अप्रासंगिक या असंगत तथ्यों के आधार पर पायी जाती है, तो सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय इसे खारिज कर सकता है।

न्यायालय ने माना कि राष्ट्रपति की शक्ति एक पूर्ण या निरंकुश शक्ति नहीं हैं और इसे इस्तेमाल करते हुए कई पूर्व शर्तों को मानना पड़ता है। इस शक्ति का इस्तेमाल करते समय दिखाना पड़ेगा कि राज्य में ऐसी परिस्थिति थी कि यह शक्ति का इस्तेमाल करना बेहद ज़रूरी पड़ गया था।

- सरकारिया आयोग की रिपोर्ट के आधार पर, जिन उदाहरणों के तहत अनुच्छेद 356 के आवेदन को सही माना जाना था, उन्हें निम्नलिखित तरीके से समूहीकृत किया गया:
  - राजनीतिक संकट
  - आंतरिक कलह
  - राज्य मशीनरी का टूटना
  - संघ कार्यकारिणी (Union Executive) के निर्देशों का अनुपालन न करना।

- यदि घोषणा को असंवैधानिक पाया जाता है तो न्यायालय के पास राज्य सरकार को पुन: स्थापित करने की शक्ति हैं।

- अनुच्छेद 356(1) के तहत जारी घोषणा को अनुछेद 356(3) के तहत संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद भी चुनौती दी जा सकती है ।

- अंत में न्यायालय ने यह निर्धारित किया गया कि “उपयुक्त मामलों में, न्यायालय के पास एक अंतरिम निषेधाज्ञा द्वारा शक्ति होगी कि वह विधानसभा के लिए नए सिरे से चुनाव कराने पर रोक लगा सके, जब तक कि राष्ट्रपति की घोषणा की वैधता को चुनौती देने वाले मुद्दे को अंतिम रूप नहीं दिया जाता है। इससे न्यायसंगत जांच और न्यायिक समीक्षा को निष्फल होने से बचाया जा सकेगा। हालाँकि, न्यायालय राष्ट्रपति के उद्घोषणा के जारी करने या उद्घोषणा के तहत किसी अन्य शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करेगा।”

manupatra®

JUSTICE adda

सरला मुद्गल बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0290/1995

तथ्य

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 44 को लागू करने की तात्कालिकत आवश्यकता पर जोर दिया,जो व्यक्तिगत कानूनों को प्रत्येक नागरिक को नियंत्रित करने वाले एक समान नागरिक संहिता से बदलने की कल्पना करता है।

न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर चार याचिकाओं पर सुनवाई की । इस अनुच्छेद के तहत व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए निवारण की मांग कर सकते हैं। याचिकाकर्ताओं ने पहली शादी को खत्म किए बिना इस्लाम में धर्म परिवर्तन करके दूसरी शादी करने की प्रथा के खिलाफ मामला दायर किया था।

कानूनी प्रश्न

- क्या हिंदू कानून के तहत एक शादीशुदा हिन्दू पति इस्लाम अपनाकर दूसरी शादी कर सकता है?
- क्या यह शादी वैध है जहां पहली शादी भंग नहीं हुई हो, जिसमें पहली पत्नी अभी भी हिन्दू है ?
- क्या धर्मत्यागी पति भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 494 के तहत अपराध का दोषी होगा?

निर्णय

न्यायालय ने माना कि हिन्दू व्यक्तिगत कानून (Hindu Personal Law) के तहत, पति-पत्नी में से किसी एक के इस्लाम में परिवर्तित होने के बाद भी, विवाह स्वत: विच्छेद (Automatically Dissolve) नहीं होगा। न्यायालय ने कहा, अगर धर्म परिवर्तन के कारण विवाह स्वत: विच्छेद हो जाता है, तो यह उन पति/पत्नी के मौजूदा अधिकारों को नष्ट करने के समान होगा जो हिंदू बने रहें।

यह मानते हुए कि मौजूदा हिंदू कानून, सख्ती से एक विवाह की प्रथा को लागू करता है, न्यायालय ने कहा कि हिन्दू विवाह जो कि हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत सम्पन्न किया गया है, वह अधिनियम में उपलब्ध आधारों के अलावा किसी अन्य तरीके से भंग नहीं किया जा सकता है । इस्लाम में धर्मांतरण की आड़ में एक धर्मत्यागी के द्वारा की गयी दूसरी शादी अभी भी उस अधिनियम का उल्लंघन करती है जो कानून उनकी पहली शादी को नियंत्रित करता है।

न्यायालय ने कहा कि किसी व्यक्ति द्वारा पहली शादी को भंग किए बिना पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान दूसरी शादी करना दंडनीय है। भारतीय दंड संहिता, धारा 494 के तहत सात साल तक के कारावास की सजा का प्रावधान करती है। इस धारा को लगने के लिए निम्नलिखित आवश्यक तत्व हैं: (1) जीवित पति या पत्नी होना; (2) उसके बावजूद दूसरी शादी करना; (3) जिसमें ऐसा विवाह अमान्य है; (4) क्योंकि यह विवाह पति या पत्नी के जीवनकाल के दौरान ही हुआ है।

यह देखते हुए कि न्यायालय ने इस केस में पाया यह चारो बिंदु इस केस में मौजूद थे। न्यायालय ने माना कि पहली शादी के अस्तित्व के दौरान, इस्लाम में परिवर्तित होने के बाद एक हिंदू पति द्वारा दूसरी शादी करने का कृत्य आईपीसी की धारा 494 को आकर्षित करता है।

समान नागरिक संहिता की तत्काल आवश्यकता को दोहराते हुए न्यायालय ने खुद की भूमिका को संविधान के सुधारक और संविधान के दृष्टिकोण को लागू करने वाले संस्था के रूप में मान्यता दी। न्यायालय ने पीड़ित की सुरक्षा के साथ साथ राष्ट्रीय एकता और एकजुटता को बढ़ावा देने के लिए एक समान संहिता लागू होने पर जोर दिया।

श्री बोधिसत्व गौतम बनाम मिस सुभ्रा चक्रवर्ती

मनु/एस सी/0245/1996

तथ्य

बैपटिस्ट कॉलेज, कोहिमा की छात्रा सुभ्रा चक्रवर्ती ने उसी कॉलेज के व्याख्याता (Lecturer) बोधिसत्व गौतम के खिलाफ न्यायिक मजिस्ट्रेट की न्यायालय में शिकायत दर्ज की।

मिस सुभ्रा और बोधिसत्व के बीच प्रेम संबंध था, जिसके दौरान मिस सुभ्रा गर्भवती हो गईं। शुरुआत में शादी से इनकार करने के बाद, बोधिसत्व ने उनसे चुपके से शादी कर ली। इसके बाद बोधिसत्व ने उन्हें बच्चे का गर्भपात कराने के लिए राजी कर लिया। दूसरी बार जब वह गर्भवती हुई तो बोधिसत्व ने फिर से उन्हें सर्जरी कराने के लिए मजबूर किया। इन सबके बीच बोधिसत्व की नौकरी सिलचर के एक कॉलेज में लग गयी। हालाँकि जब मिस सुभ्रा ने उसके साथ सिलचर जाने का फैसला किया तो बोधिसत्व ने उनकी शादी और अपने वादों को पूरी तरह से अस्वीकार करते हुए उन्हें छोड़ दिया।

शिकायत में, मिस सुभ्रा ने आरोप लगाया कि बोधिसत्व ने उन्हें धोखे में अपने साथ रख कर यौन सम्बन्ध बनाया जिसके चलते उन्होंने उस पर बलात्कार का आरोप लगाया। उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि बोधिसत्व ने धोखे से उन्हें विश्वास दिलाया कि वह उसकी कानूनी रूप से विवाहित पत्नी है।आरोपी ने उस पर दो बार गर्भपात कराने के लिए मजबूर करने का आरोप लगाया। इन सबसे बढ़कर, उसने आरोपी के कृत्यों के कारण गंभीर मानसिक और शारीरिक पीड़ा झेलने की शिकायत की।

भारतीय दंड संहिता की कई धाराओं के तहत आपराधिक मामला दर्ज किया गया। आरोपी ने शिकायत और कार्यवाही को रद्द कराने के लिए उच्च न्यायालय और उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। हालाँकि न्यायालयों ने उनकी याचिका खारिज कर दी और कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पीड़िता को मासिक मुआवजा देने का आदेश दिया।

कानूनी प्रश्न

क्या आरोपी को शिकायतकर्ता को गुजारा भत्ता देने के लिए बाध्य किया जा सकता है?

निर्णय

न्यायालय ने बोधिसत्त्वा से याचिकाकर्ता को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी ठहराया। न्यायालय ने माना कि बलात्कार जीवन जीने के अधिकार का उल्लंघन है, जिसे अनुच्छेद 21 में मानवीय गरिमा के साथ जीने के अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है।

न्यायालय ने पाया गया कि बोधिसत्व के कार्यों ने सुभ्रा की मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता के साथ जीवन के अधिकार का उल्लंघन किया। न्यायालय ने भारत में महिलाओं द्वारा सामना किये जाने वाले सामाजिक बाधाओं को मद्देनज़र रखते हुए, विशेषकर मनोवैज्ञानिक और सामाजिक नतीजों को ध्यान में रखते हुए, बलात्कार पीड़ितों के लिए, आपराधिक इंजरीज मुआवजा बोर्ड (Criminal Injuries Compensation Board) की स्थापना का आदेश दिया ताकि उनके द्वारा अनुभव की गयी यौन पीड़ा के बाद समर्थन दिया जा सके।

न्यायालय ने निर्धन बलात्कार पीड़ितों, जो अपराध और सत्ता के दुरुपयोग (Crime and Abuse of Power) से पीड़ित, उनकी मदद करने के लिए दिशानिर्देश भी जारी किया, जो कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित न्याय के सिद्धांतों (Principles of the UN Declaration of Justice) के अनुरूप है।

न्यायालय ने बोधिसत्व गौतम को शिकायत दर्ज होने की तारीख से लंबित आपराधिक मामले के दौरान चक्रवर्ती की आजीविका के लिए रखरखाव लागत के रूप में 1000 रुपये का भुगतान करने का आदेश दिया।

डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य

मनु/एस सी/0157/1997

तथ्य

विधिक सेवा पश्चिम बंगाल, एक गैर-राजनीतिक संगठन के कार्यकारी अध्यक्ष ने भारत के मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र लिखा। इस पत्र में अध्यक्ष ने पुलिस हिरासत में हुई मौतों के संबंध में द टेलीग्राफ, द स्टेट्समैन और इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित कुछ समाचारों पर न्यायाधीश का ध्यान आकर्षित किया। इसके अलावा अध्यक्ष ने न्यायालय से अनुरोध किया कि पुलिस हिरासत में अत्याचार और मौत के लिए पीड़ित या उसके परिवार के सदस्यों को मुआवजा देने के लिए हिरासत न्यायशास्त्र (Custody Jurisprudence) विकसित करने और इसके तौर-तरीके तैयार करने का भी अनुरोध किया। सर्वोच्च न्यायलय ने पत्र को रिट मानकर इस मुद्दे को अपने पास याचिका की तरह स्वीकार किया।

निर्णय

पुलिस हिरासत में हिंसा के बढ़ते मामलों से चिंतित होकर न्यायालय ने टिप्पणी कि, 'पुलिस हिरासत में हिंसा' एक चिंता का विषय है। यह इस तथ्य के कारण और भी गंभीर हो गया है कि यह हिंसा और अत्याचार उन लोगों द्वारा किया गया है जिन्हें नागरिकों का संरक्षक माना जाता है।"

यह मानते हुए कि हिरासत में दी गयी यातना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन जीने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है, न्यायालय ने कहा कि: "विधि के शासन द्वारा शासित सभ्य समाज में हिरासत में मौत शायद सबसे बुरे अपराधों में से एक है। संविधान के अनुच्छेद 21 और 22(1) में निहित अधिकारों को पूर्ण तरीके से और ईमानदारी से संरक्षित करने की आवश्यकता है।

क्या कोई नागरिक पुलिसकर्मी द्वारा गिरफ़्तार होते ही अपने जीवन जीने के मौलिक अधिकार को खो देता है? क्या किसी नागरिक की गिरफ़्तारी पर उसके जीवन जीने के अधिकार को स्थगित किया जा सकता है? ये प्रश्न मानवाधिकार न्यायशास्त्र की रीढ़ की हड्डी हैं। इन सवालों का जवाब एक ज़ोर से कहा हुआ 'ना' होना चाहिए।"

न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि हिरासत में हुई हिंसा के अपराधियों को शायद ही कभी सज़ा मिलती है। हिरासत में मौतों की वजह बनी परिस्थितियों में हेरफेर से पुलिस अधिकारियों को हिरासती हिंसा के जिम्मेदारी से बचने में मदद मिली है। पुलिस शक्ति के दुरुपयोग को रोकने और उनकी पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए, न्यायालय ने जारी किया कि गिरफ्तारी या हिरासत के सभी मामलों में निम्नलिखित दिशानिर्देशों का पालन किया जाना चाहिए:

"गिरफ्तार व्यक्ति से पूछताछ करने वाले पुलिस कर्मियों के पास पहचानने योग्य सटीक, दृश्यमान और स्पष्ट नाम और पदनाम का विवरण होना चाहिए। इन सभी पुलिस कर्मियों का विवरण एक रजिस्टर में दर्ज किया जाना चाहिए, जो गिरफ्तारी की पूछताछ संभालते हैं।

गिरफ्तार व्यक्ति की गिरफ्तारी करने वाला पुलिस अधिकारी गिरफ्तारी के समय गिरफ्तारी मेमो तैयार करेगा और ऐसे मेमो को कम से कम एक गवाह द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जो या तो गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के परिवार का सदस्य या गिरफ्तार किये जाने वाली जगह का एक भरोसेमंद व्यक्ति हो सकता है। मेमो में गिरफ्तार करने वाले अधिकारी/व्यक्ति के हस्ताक्षर के साथ दिन, तारीख और वक़्त भी लिखा होना चाहिए।

जिस व्यक्ति को पुलिस स्टेशन या पूछताछ केंद्र में गिरफ्तार किया गया है या हिरासत में लिया गया है उसे एक दोस्त या रिश्तेदार या अन्य व्यक्ति को जल्द से जल्द सूचित करने का अधिकार होगा कि उसे गिरफ्तार कर लिया गया है और उसे विशेष स्थान पर हिरासत में लिया जा रहा है, जब तक कि गिरफ्तारी का प्रमाणक गवाह स्वयं उसका दोस्त या रिश्तेदार न हो।

गिरफ्तार व्यक्ति की गिरफ्तारी का समय, स्थान और हिरासत का स्थान पुलिस द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति के दोस्त या रिश्तेदार को जिले के विधिक सहायता केंद्र और संबंधित क्षेत्र के पुलिस थाना को संक्षिप्त में जानकारी गिरफ़्तारी के 8-12 घंटो के भीतर दे देनी चाहिए।

गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसके अधिकार बताएँ जाएँ। उदाहरण के तौर पर जैसे ही उसे गिरफ्तार किया जाए या हिरासत में लिया जाए, वह इस गिरफ़्तारी के बारे में दूसरे को सूचित कर सकते हैं।

व्यक्ति को हिरासत में रखे गए स्थान पर एक डायरी में प्रवृष्टि ज़रूर करनी चाहिए जिसमें गिरफ्तार किये गए व्यक्ति के नज़दीकी दोस्त का नाम लिखा होना चाहिए, जिसको उसके गिरफ़्तारी का पता हो और गिरफ्तार करने वाले पुलिस अफसर का भी विवरण होना चाहिए।

गिरफ्तार किये गए व्यक्ति की शारीरिक जांच उसकी गिरफ़्तारी के वक़्त किया जाना चाहिए, जिससे कि यदि उसके शरीर पर मामूली चोटें मौजूद हों, तो दर्ज कराई जा सके । 'निरीक्षण ज्ञापन' (Inspection Memo) पर गिरफ्तार व्यक्ति और गिरफ्तारी करने वाले पुलिस अधिकारी दोनों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए और इसकी प्रति गिरफ्तार व्यक्ति को प्रदान की जानी चाहिए।

गिरफ्तार व्यक्ति की हिरासत के हर 48 घंटे में प्रशिक्षित डॉक्टर द्वारा जांच होना चाहिए जिसमे जांच करने वाले डॉक्टर का पेनल, जो संबंधित राज्य के स्वास्थ्य सेवा निदेशक (Director of Health Services) द्वारा स्वीकृति प्राप्त किया हुआ हो। ऐसा डॉक्टरों का पेनल राज्य के स्वास्थ्य सेवा निदेशक सभी तहसील और ज़िलों के लिए होना चाहिए।

ऊपर बताए गए गिरफ्तारी मेमो सहित सभी दस्तावेजों की प्रतियां, क्षेत्रीय मजिस्ट्रेट को रिकॉर्ड के लिए भेजी जानी चाहिए।

गिरफ्तार व्यक्ति को पूछताछ के दौरान वकील से मिलने की अनुमति दी जा सकती है । हालाँकि यह वकील की उपस्थिति पूछताछ के पूरे समय उपलब्ध नहीं होगी।

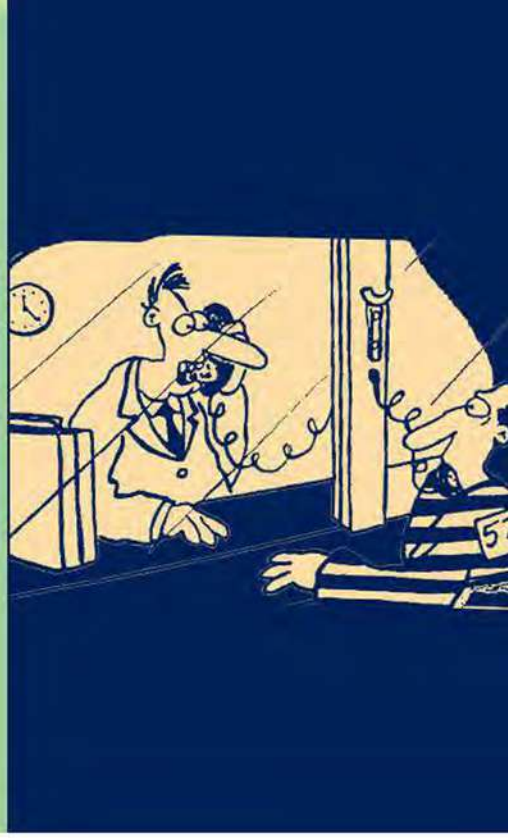

सभी जिलों और राज्य मुख्यालयों पर एक पुलिस नियंत्रण कक्ष स्थापित जाना चाहिए, जहां गिरफ्तारी करने के 12 घंटे के भीतर पुलिस नियंत्रण कक्ष में इसे एक विशिष्ट नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शित किया जा सके ।"

न्यायालय ने पाया कि राज्य अपने लोक सेवकों के कृत्यों के लिए प्रतिनिधिक दायित्व है जिसके परिणामस्वरूप नागरिकों के जीवन जीने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है। इसके लिए आर्थिक मुआवज़ा एक प्रभावी और उपयुक्त उपाय है।

एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0261/1997

तथ्य

यह मामला भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 323ए(2)(डी) और अनुच्छेद 323ए(3)(डी) की संवैधानिक वैधता के संबंध में था। इसका संबंध प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 (Administrative Tribunals Act) की संवैधानिक वैधता से भी है। इसके अलावा इस केस में यह भी सवाल था कि क्या भारत के संविधान के भाग XIV-ए के तहत गठित अधिकरण (Tribunals) न्यायिक समीक्षा के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) ले सकते हैं ?

कानूनी प्रश्न

क्या संविधान के अनुच्छेद 323ए या अनुच्छेद 323बी के तहत गठित अधिकरण को, किसी कानून प्रावधान/नियम की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करने का क्षेत्राधिकार हैं?

क्या न्यायाधिकरण जैसा कि वे वर्तमान में कार्य कर रहे हैं, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का निर्वहन करने में उच्च न्यायालयों के प्रभावी विकल्प कहे जा सकते हैं? यदि इसका जवाब न है ,तो उन्हें उनके मुख्य उद्देश्यों के अनुरूप बनाने के लिए क्या परिवर्तन आवश्यक हैं?

क्या संविधान के अनुच्छेद 323ए(2)(डी) या अनुच्छेद 323बी(3)(डी) द्वारा संसद या राज्य विधानमंडलों को दी गयी शक्ति के तहत, अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को छीन कर, किसी भी मामले के संबंध में 'सभी न्यायालयों' की क्षेत्राधिकार को ले सकते हैं ? क्या यह अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को दिए गए न्यायिक समीक्षा की शक्ति के विपरीत है ?

निर्णय

न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 323ए(2)(डी) और अनुच्छेद 323ए(3)(डी), असंवैधानिक है जब वो अनुच्छेद 226/227 और 32 के तहत उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को छिनते हैं। सर्वोच्च न्यायालयों के साथ-साथ, अनुच्छेद 323(बी) के तहत बनाए गए अधिकरण के पास भी विधायी कार्रवाई (Executive Action) की न्यायिक समीक्षा की शक्ति है। प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णय उच्च न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हैं।

अधिकरणों के क्षेत्राधिकार को परिभाषित करते हुए न्यायालय ने कहा कि:

"अधिकरण उन मामलों की सुनवाई करने में सक्षम हैं जहां क़ानूनी प्रावधानों की वैधता पर सवाल उठाए जाते हैं। हालांकि, इस कर्तव्य के निर्वहन में वे उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के विकल्प के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, जिन्हें हमारी संवैधानिक व्यवस्था के तहत विशेष रूप से दायित्व सौंपा गया है।

इस संबंध में उनका कार्य केवल न्यायालयों के पूरक है और अधिकरणों के ऐसे सभी निर्णय संबंधित उच्च न्यायालयों की एक खंड पीठ के समक्ष जांच के अधीन होंगे। परिणामस्वरूप अधिकरणों के पास अधीनस्थ विधानों और नियमों की शक्तियों का परीक्षण करने की शक्ति भी होगी। हालाँकि, न्यायाधिकरणों की यह शक्ति एक महत्वपूर्ण अपवाद के अधीन होगी। यह अपवाद यह होगा कि वह उन प्रश्नों पर विचार नहीं करेंगे जो उन कानूनों से सम्बंधित हैं जिसके अंतर्गत इन अधिकरणों को मान्यता प्राप्त है।

हम यह भी जोड़ते हैं कि अधिकरण, हालांकि कानून के उन क्षेत्रों के संबंध में एकमात्र न्यायालयों के रूप में कार्य करना जारी रखेंगे जिनके लिए उनका गठन किया गया है। इसका मतलब यह है कि यदि किसी व्यक्ति को यदि किसी कानून के मान्य होने पर सवाल करना है, तो वह सीधे तौर पर अधिकरणों को छोड़ उच्च न्यायालय तक नहीं जा सकता है । हालाँकि इसका अपवाद ऊपर दिया गया है जब उस कानून का सवाल हो, जिसके माध्यम से इन अधिकरणों को स्थापित किया गया है, जिस स्थिति में सीधे तौर पर उच्च न्यायालय तक पहुंचा जा सकता है।"

यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधिकरण कुशलतापूर्वक कार्य करें और इसके न्यायालय ने निम्नलिखित सुझाव दिए:

“हमारा विचार है कि जब तक ऐसे सभी न्यायाधिकरणों के प्रशासन के लिए एक पूरी तरह से स्वतंत्र एजेंसी की स्थापना नहीं की जा सकती है, तब तक यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे सभी न्यायाधिकरण, जहां तक संभव हो, एक एकल नोडल मंत्रालय के तहत होने चाहिए जो इन न्यायाधिकरणों के कामकाज की देखरेख करने की स्थिति में होगा। कई कारणों से यह कार्य उचित रूप से विधि मंत्रालय कर सकता है। मंत्रालय के लिए न्यायाधिकरणों के कामकाज की देखरेख के लिए एक स्वतंत्र पर्यवेक्षी निकाय नियुक्त करने की पूरी मान्यता रहेगी।

इससे यह सुनिश्चित होगा कि यदि न्यायाधिकरण का अध्यक्ष या अध्यक्ष किसी कारण से न्यायाधिकरण के कामकाज में पर्याप्त रुचि लेने में असमर्थ है, तो पूरी प्रणाली ख़राब नहीं होगी और न्याय से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं रहना होगा। एक एकल मूल संगठन (Parent Organisation) का निर्माण, हमारे विचार में, वर्तमान प्रणाली की कई बुराइयों को दूर करेगा।

यदि आवश्यकता पड़ी, तो केंद्र और राज्य स्तर पर अलग-अलग मूल संगठन का निर्माण किया जा सकता है। ऐसे पर्यवेक्षी प्राधिकरण (Supervisory Authority) को देश के सभी अधिकरणों के सदस्यों की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जानी चाहिए। अधिकरणों के सदस्यों के चयन की प्रक्रिया इस तरीके से होनी चाहिए कि अधिकरणों के कामकाज के लिए धन आवंटित किया जाए और अन्य सभी विवरण स्पष्ट रूप से बताए जाने चाहिए।”

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य

मनु/एस सी/0786/1997

तथ्य

इस मामले में याचिका का तात्कालिक कारण राजस्थान के एक गाँव में एक सामाजिक कार्यकर्ता के साथ क्रूर सामूहिक बलात्कार था, जो बाल विवाह के खिलाफ लड़ाई में शामिल थी। इस घटना से पता चला कि एक कामकाजी महिला को किन खतरों का सामना करना पड़ सकता है।

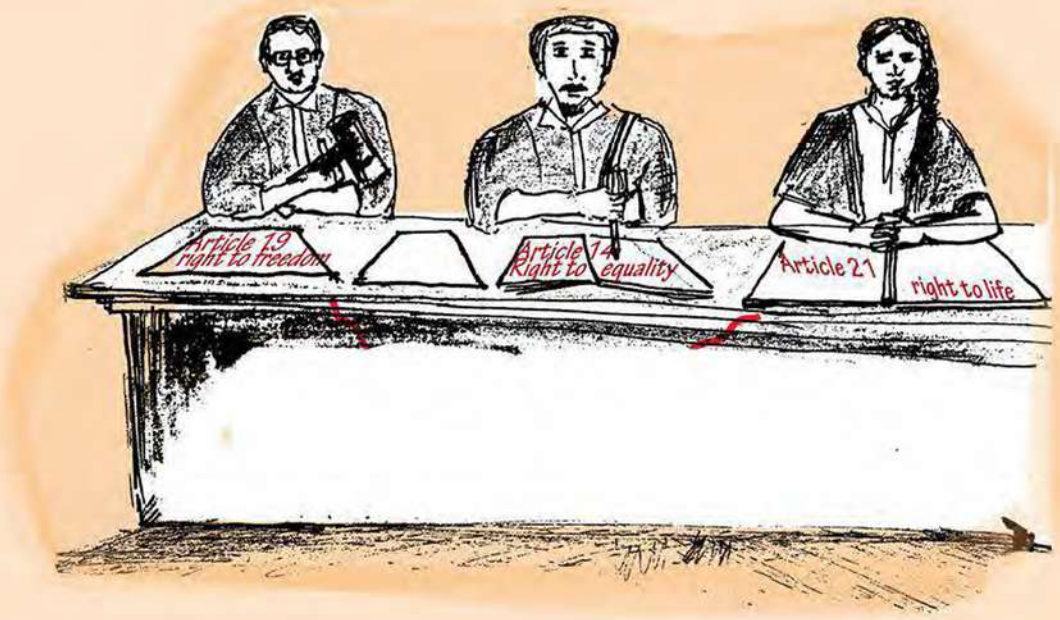

इस मामले के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए निम्नलिखित दिशानिर्देश दिए थे :

1 यौन उत्पीड़न के कृत्यों को रोकना, समाधान करना और अभियोजन सुनिश्चित करना नियोक्ता (Employer) का कर्तव्य है।

2 कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न का मतलब क्या है?

यौन उत्पीड़न उन परिस्थितियों में किया गया अवांछित यौन व्यवहार या आचरण है जहां यह पीड़ित के रोजगार जैसे वेतन, मानदेय या अन्य स्थितियों इत्यादि को प्रभावित करता हो और जो पीड़ित के स्वास्थ्य और सुरक्षा से सम्बंधित समस्याओं का कारण बन सकता है।

3 प्रतिकूल कार्य वातावरण को खत्म करने के लिए उचित कदम उठाएं।

4 ऐसे आरोपी के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही उचित प्राधिकारी के समक्ष शुरू की जानी चाहिए।

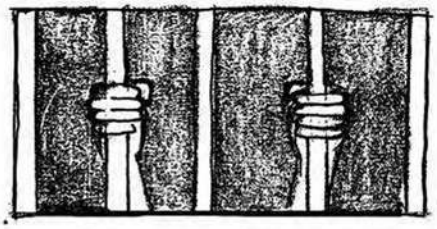

5 अनुशासनात्मक कार्रवाई भी की जानी चाहिए।

6 शिकायतों के निवारण के लिए एक शिकायत तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए।

7 एक शिकायत समिति गठित की जानी चाहिए जिसकी अध्यक्षता एक महिला को करनी चाहिए।

8 कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के प्रति जागरूकता फैलाई जानी चाहिए ।

9 कार्यकर्ताओं को उचित मंच पर मुद्दे उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए।

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम (रोकथाम, निषेध और निवारण) 2013 में पारित किया गया था|

समता बनाम आंध्र प्रदेश राज्य

मनु/एस सी/1325/1997

तथ्य

समता आंध्र प्रदेश में काम करने वाला एक वकालत और सामाजिक कार्य समूह है, जो आदिवासी समुदायों और पर्यावरण के अधिकारों और सुरक्षा के लिए काम रहा है। उच्च न्यायालय और स्थानीय न्यायालयों द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों में निजी खनन कंपनियों को दिए गए पट्टों के लिए आंध्र प्रदेश सरकार के खिलाफ उनके मामले को खारिज करने के बाद समता ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में एक विशेष अनुमति याचिका (Special Leave Petition) दायर की।

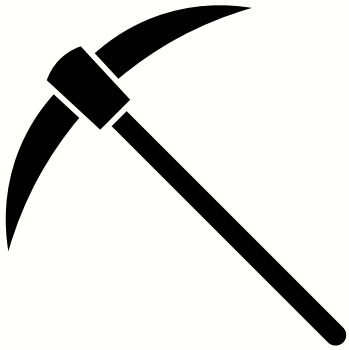

कानूनी प्रश्न

इस मामले में अनुसूचित क्षेत्रों में गैर-आदिवासियों के पक्ष में खनन पट्टे देने की सरकार की शक्ति पर सवाल उठाया गया, जो कि खदान और खनिज (विनियमन और विकास अधिनियम, 1957 की धारा 11(5)) (Mine and Mineral Regulation and Development Act, 1957) के विनियमन का उल्लंघन है, जो हस्तांतरण पर रोक लगाता है।

अनुसूचित क्षेत्र में किसी भी भूमि का पट्टा किसी गैर-आदिवासी को दिया जाना तथा इसके बाद गैर-आदिवासियों को खनन अधिनियम के अनुसार दिये गये पट्टे वैध हैं या नहीं?

निर्णय

- न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि गैर-आदिवासियों, कंपनी, निगम समूह या साझेदारी फर्म (Partnership Firm) आदि को खनन पट्टे का हस्तांतरण असंवैधानिक,अमान्य और निष्क्रिय है ।

- किसी भी रूप में उनके शोषण को रोकने के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में गैर आदिवासियों को पट्टे, निगम आदि के माध्यम से भूमि का हस्तांतरण निषिद्ध है।

- न्यायालय ने घोषणा की कि एक "व्यक्ति" की परिभाषा में प्राकृतिक व्यक्ति और न्यायिक व्यक्ति दोनों शामिल होंगे।

- इसने यह भी माना कि सरकार या उसके माध्यमों (Instrumentality) को भूमि का हस्तांतरण करना सार्वजनिक संपत्ति का हस्तांतरण जैसा है क्योंकि सार्वजनिक निगमों का उद्देश्य सार्वजनिक हित में है और इसलिए इस तरह के हस्तांतरण को बरकरार रखा जाता है।

- न्यायालय ने निर्देश दिया कि अच्छी सड़क बनवाकर परिवहन सुविधाओं की स्थापना, जल संसाधनों, स्कूलों, अस्पतालों, स्वच्छता और रखरखाव के लिए औद्योगिक/व्यावसायिक गतिविधि करवाने के लिए कुल मुनाफे का २०% एक स्थायी निधि के रूप में अलग रखा जाना चाहिए।

- पट्टे के नवीनीकरण को पट्टा नए रूप से देना में गिना जाएगा और इसलिए ऐसा कोई भी नवीनीकरण निषिद्ध है।

- जिन राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि खनन पट्टों पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने का कोई कानूनी प्रावधान नहीं है, वहां सचिवों की एक समिति और एक राज्य मंत्रिमंडल उप समिति का गठन किया जाना चाहिए और उसके बाद निर्णय लिया जाना चाहिए।

- सभी मुख्यमंत्रियों, संबंधित मंत्रालय संभालने वाले मंत्रियों और प्रधान मंत्री और संबंधित केंद्रीय मंत्रियों का सम्मेलन करके पूरे देश में राष्ट्रीय भूमि के संबंध में एक सुसंगत योजना के लिए नीतिगत निर्णय लिया जाना चाहिए।

विनीत नारायण बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0827/1998

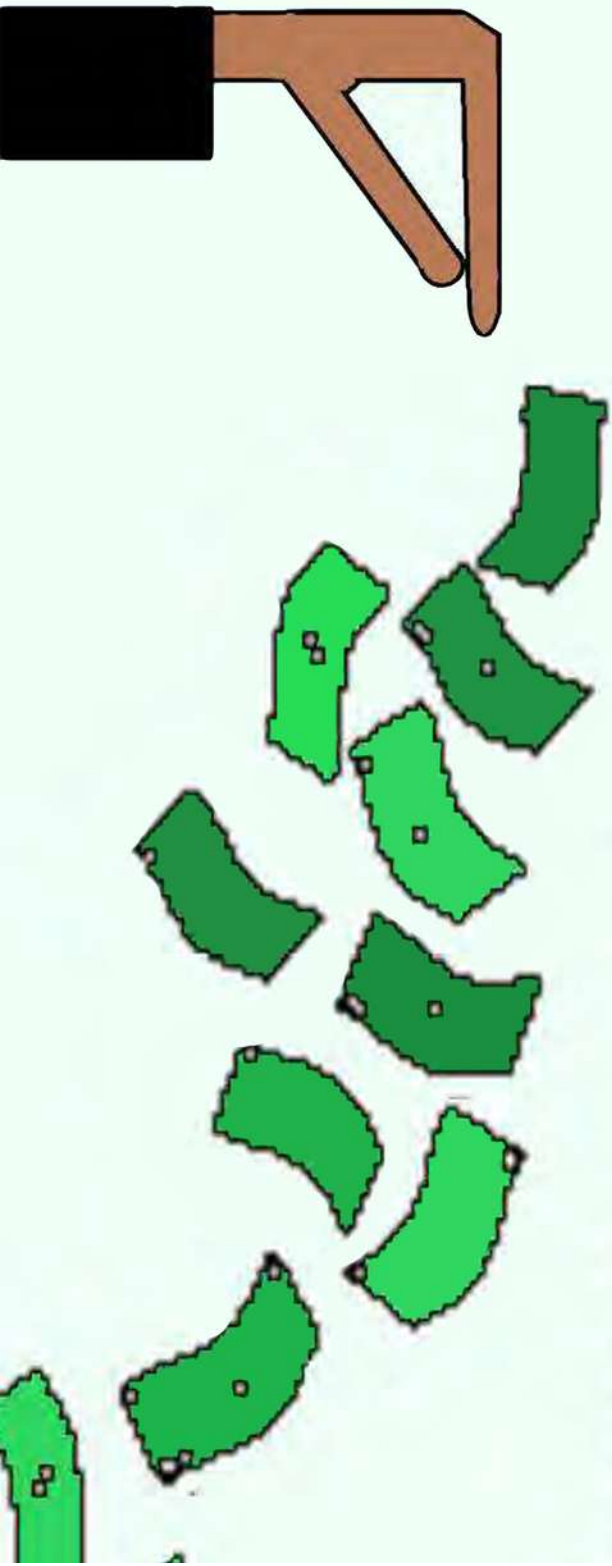

तथ्य

आतंकवादी हिज्बुल मुजाहिदीन के एक तथाकथित अधिकारी (Alleged Officer) की गिरफ्तारी से आतंकवादी संगठन द्वारा कई उच्च पदस्थ राजनेताओं और सरकारी अधिकारी को संभावित रिश्वत भुगतान का पता चला। यह पता चलने के बाद भी पर्याप्त जांच के संदर्भ में कुछ भी नहीं किया गया, जिसे ऐतिहासिक हवाला कांड के रूप में भी जाना जाता है ।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिकाएं जनहित में दायर की गई थीं, जिसमें आरोप लगाया गया था कि केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) उन अधिकारियों के ख़िलाफ़ जांच शुरू करने में विफल रही, जो बेहद प्रभावशाली और शक्तिशाली सरकारी पदों पर कार्यरत थे । इससे सीबीआई का स्पष्ट इरादा फंसे हुए व्यक्तियों को बचाने का लग रहा था ।

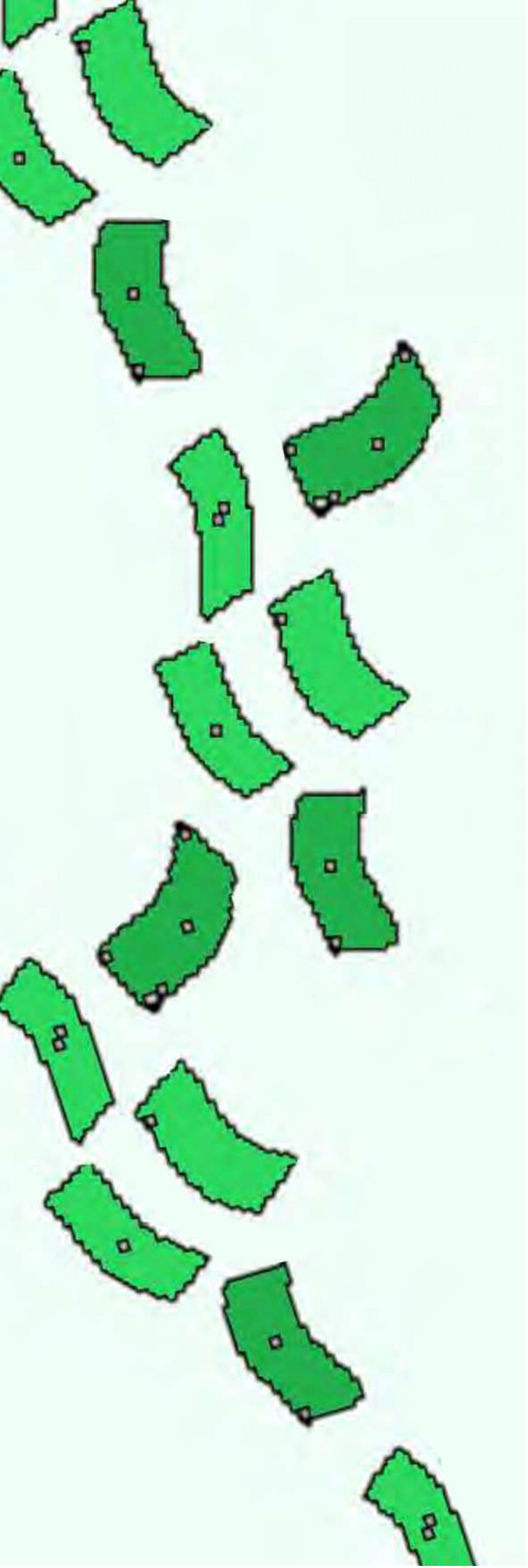

कानूनी प्रश्न

क्या वह लोग जो देश के गणमान्य व्यक्तियों की सूची में आते हैं और यदि उनके खिलाफ आरोप पाए जाते हैं तो क्या ऐसी स्थिति में में सीबीआई (जो कार्यपालिका के नियंत्रण में है) द्वारा जांच में देरी की स्थिति में कोई न्यायिक उपाय उपलब्ध है?

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में पहली बार किसी बड़े पद पर कार्यरत राजनेताओं, सरकारी पदाधिकारी और अपराधियों के बीच सांठगांठ का संज्ञान लिया। अपने फैसले के पीछे के तर्क को समझाते हुए, न्यायालय ने जांच एजेंसियों को किसी भी बाहरी प्रभाव से बचाने की तत्काल आवश्यकता व्यक्त की।

उन्होंने कहा, "यह हमारे लिए एक निष्पक्ष और निष्पक्ष एजेंसी के लिए आवश्यक संरचना, संविधान और स्थायी उपायों से निपटने का अवसर है। इन कार्यवाहियों में सभी पक्षों द्वारा प्रदर्शित विधि शासन (Rule of Law) के प्रति विश्वास और प्रतिबद्धता लोकतंत्र के अस्तित्व की निश्चित गारंटी है, क्यूंकि यह दर्शाता हैं कि ऐसे देश में आधार कानून का शासन है। इस कार्यवाही में हमने समानता की अवधारणा के मूल मंत्र को अपनाया हैं जिसमें कहा जाता है 'चाहे आप कितने भी ऊँचे हों, कानून आपके ऊपर है'।"

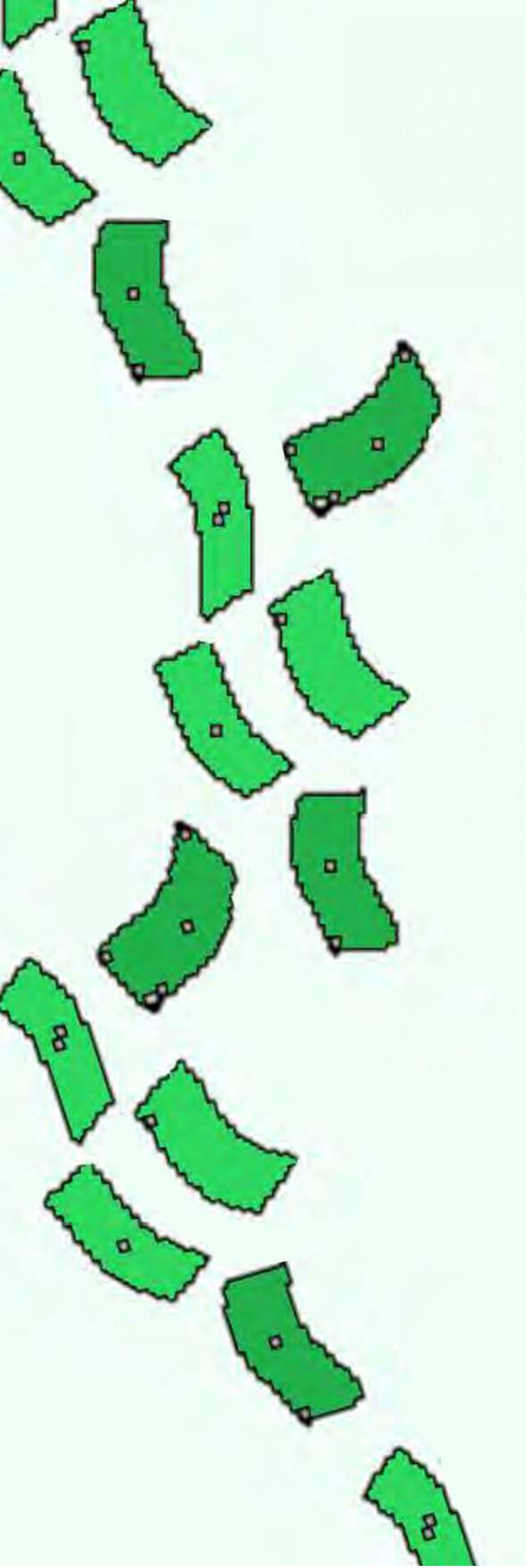

जहां तक याचिकाओं के दायरे और ऐसे मामलों में न्यायपालिका द्वारा निभाई जा सकने वाली उपचारात्मक भूमिका (Remedial Role) की पुष्टि के संबंध की बात है, न्यायालय ने कहा कि जिस किसी के भी खिलाफ उचित संदेह है, उसके साथ कानून के तहत समान और समरूप व्यवहार किया जाना चाहिए । एजेंसियां ऐसा करने में विफल रही हैं और इसलिए इसको रोकने वाली एक योजना का होना जरूरी है।

न्यायालय ने सीबीआई की स्वतंत्रता और स्वायत्तता (Autonomy) सुनिश्चित करने के लिए दिशानिर्देश जारी किए और सीबीआई निदेशक के चयन में पारदर्शिता की मांग की और न्यायालय ने निर्देश जारी किए ताकि सीबीआई की स्वतंत्रता और स्वायत्तता सुनिश्चित हो, और सीबीआई निदेशक के चयन में पारदर्शिता रहे । न्यायालय ने केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी), एक स्वतंत्र शासकीय एजेंसी, जिसका उद्देश्य पारदर्शिता और स्वतन्त्रता सुनिश्चित करना था को सीबीआई का प्रभार सौंपा जिससे कार्यपालिका नियंत्रण या हस्तक्षेप से यह तंत्र मुक्त रहे। यह निर्देश सीबीआई को केंद्र सरकार की निगरानी से बाहर कर दिया क्योंकि बड़े लोगों के मुद्दे में सीबीआई के धीमे रवैया को ख़राब माना जाता था। अब सीवीसी की जिम्मेदारी थी कि सरकारी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों की आरोपित की पहचान के बिना और सरकार से किसी प्रकार की हस्तक्षेप न करते हुए गहराई से जांच की जाए। इसने

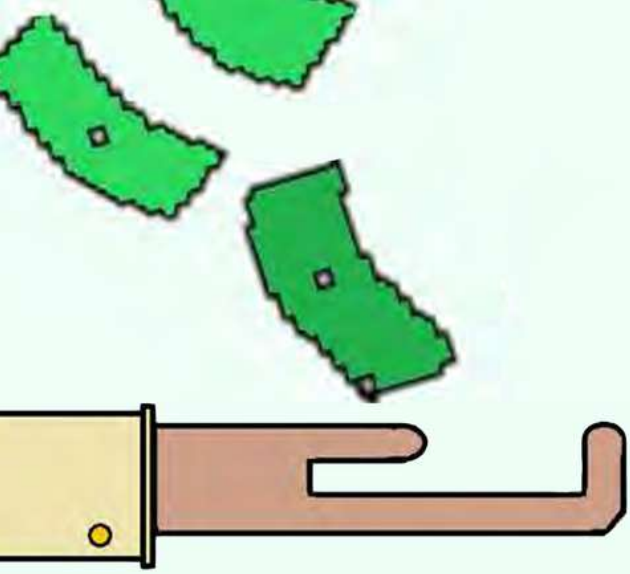

यह भी निर्देश जारी किए कि सीवीसी की स्वतंत्रता और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए, उसे कानूनी दर्जा दिया जाए।

न्यायालय ने प्रवर्तन निदेशालय (Enforcement Directorate), नोडल एजेंसी और इन भ्रष्ट लोगों को जिम्मेदार ठहरने वाली एजेंसी को प्रभावी कामकाज और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के निर्देश भी दिए।

भ्रष्टाचार पर विधायी नीति (Legislative Policy) की अनुपस्थिति में घोषित दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए न्यायालय ने अपने क्षेत्रअधिकार का प्रयोग किया।

अध्यक्ष रेल्वे बोर्ड
बनाम
चंद्रिमा दास

मनु/एस सी/0046/2000

तथ्य

कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत कर रही वकील श्रीमती चंद्रिमा दास ने पीड़िता श्रीमती हनूफा खातून, एक बांग्लादेशी महिला के लिए मुआवजे का दावा किया। इस दावे में संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष सहित रेलवे के कई कर्मचारियों के खिलाफ एक याचिका दायर की। हनुफ़ा खातून, एक बांग्लादेशी नागरिक थी जिसके साथ पूर्वी रेलवे के हावड़ा स्टेशन पर रेलवे के कर्मचारियों सहित कई लोगों ने सामूहिक बलात्कार किया था।

श्रीमती चंद्रिमा दास ने हावड़ा रेलवे स्टेशन पर असामाजिक और आपराधिक गतिविधियों को खत्म करने के लिए उत्तरदाताओं को निर्देश देने सहित कई अन्य राहतों का भी दावा किया।

उच्च न्यायलय ने माना की चूँकि बलात्कार रेल यात्री निवास में किया गया था और रेलवे कर्मचारियों द्वारा किया गया था, इसीलिए श्रीमती हनुफ़ा ख़ातून को मुआवजे के रूप में 10 लाख रुपये की राशि दिया जाना चाहिए।

अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के इस फैसले के खिलाफ अपील की।

कानूनी प्रश्न

- क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शुरू की गई कार्यवाही में मुआवज़े का दावा किया जा सकता है?

- क्या भारतीय रेलवे/भारत संघ पीड़िता को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है?

निर्णय

मुआवजे के लिए पीड़ित के दावे की वैधता को बरकरार रखते हुए, न्यायालय ने कहा कि-

"यह तर्क कि श्रीमती हनुफ़ा खातून को हर्जाने या मुआवजे के लिए सिविल न्यायालय जाना चाहिए था और इस मामले पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका में विचार नहीं किया जाना चाहिए था, इस न्यायालय को स्वीकार नहीं है। जहां सार्वजनिक पदाधिकारी शामिल हो और मामला मौलिक अधिकारों के उल्लंघन या लोक कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित है, तो यह हक़ अभी भी लोक कानून (Public Laws) के तहत उपलब्ध होगा, भले ही निजी कानून (Private Laws) के तहत मुआवज़ा के लिए एक अलग मुकदमा दायर किया गया हो।"

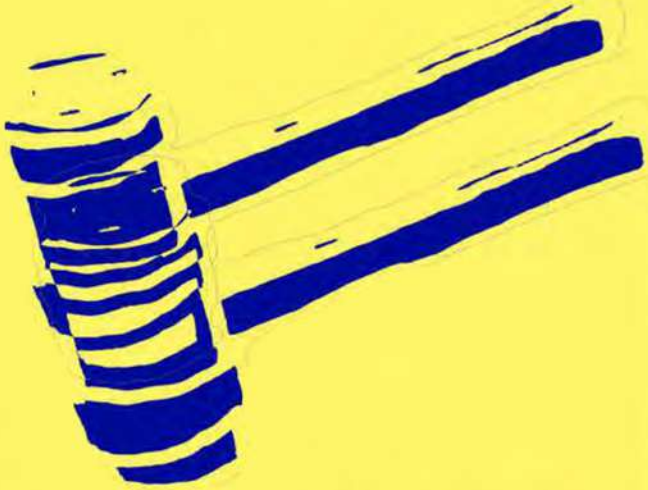

संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत दिए गए जीवन का अधिकार नागरिकों और गैर-नागरिकों के लिए उपलब्ध है। न्यायालय ने माना कि पीड़िता को मुआवजा देना राज्य का संवैधानिक दायित्व है। इस प्रकार, मुआवजे देने वाला उच्च न्यायालय का फैसला सही था।

न्यायालय ने रेलवे के कर्मचारियों द्वारा किए गए बलात्कार के अपराध के लिए केंद्र सरकार को प्रतिनिधिक दायित्व (Vicariously Liable) पाया। न्यायालय ने कहा कि एक कल्याणकारी राज्य में, सरकार के कार्य कई प्रकार के होते हैं यह न केवल रक्षा और प्रशासन से संबंधित, बल्कि शिक्षा, वाणिज्यिक, सामाजिक, आर्थिक और यहां तक कि वैवाहिक मामलों जैसे क्षेत्रों तक भी विस्तारित होते हैं।

नर्मदा बचाओ आंदोलन
बनाम
भारत संघ और अन्य

मनु/एस सी/0046/2000

तथ्य

1994 में, याचिककर्ता एक बांध विरोधी संगठन थे, जिन्होंने सरदार सरोवर बांध के निर्माण का विरोध करने के लिए एक रिट याचिका दाखिल की थी। बांध का निर्माण नर्मदा नदी तंत्र के जल संसाधनों का उचित उपयोग के लिए किया जा रहा था। पर्यावरण स्वीकृतियों की कमी, वहां के रहवासियों को हटाना और अपर्याप्त पुनर्वास योजना उन आधारों में से थे जिन पर उसने बांध के निर्माण को रोकने की मांग की थी।

निर्णय

फैसले के आरंभ में न्यायालय ने परियोजना के लाभों को उजागर किया। याचिककर्ता द्वारा यह दावा उठाया गया था कि परियोजना राष्ट्रीय हित के खिलाफ है। इस दावे को एक 1990 की विश्व बैंक की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए खारिज कर दिया गया, जिसमें परियोजना की लागत और लाभ का विश्लेषण किया गया था।

इस रिपोर्ट ने मुख्य रूप से यह कहा था कि सरदार सरोवर बांध निर्माण के लाभ इतने बड़े थे कि इन्सान और पर्यावरण को बाधित होने के जोखिम के मुकाबले जनता का उचित भला होना बेहतर लगा।

परियोजना का आयोजन आवश्यक पर्यावरण स्वीकृतियों के बिना नहीं किया गया था। जल संसाधन मंत्रालय, पर्यावरण और वन मंत्रालय और गुजरात सरकार ने परियोजना के पर्यावरणीय प्रभाव का विश्लेषण करने वाली विस्तृत रिपोर्टें प्रस्तुत की थी। इसे मानते हुए, न्यायालय ने कहा कि यह स्पष्ट था कि सरकार वास्तव में परियोजना के पर्यावरणीय पहलुओं के बारे में गहराई से चिंतित थी।

याचिकाकर्ता के इस दावे के विपरीत कि इस परियोजना से पर्यावरण को नुकसान पहुंचने की संभावना है, न्यायालय ने कहा कि यह परियोजना कई मायनों में पर्यावरण के संरक्षण में सकारात्मक योगदान देगी । इस परियोजना के माध्यम से सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पानी पहुंचाना और पानी की कमी की परिस्थिति में लाभ पहुँचाने की आवश्यकता थी। देश तनाव में है, इसलिए कृषि को बनाए रखने और हरित क्षेत्र को फैलाने में मदद के लिए इस परियोजना के लाभों की आवश्यकता है।

विस्थापित जनजातीय और गैर-जनजातीय परिवारों के पुनर्वास के सवाल के संबंध में, न्यायालय ने एक पर्याप्त पुनर्स्थापन योजना के अस्तित्व पर ध्यान दिया। 1979 में, न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी द्वारा नेतृत्व किए गए ट्रिब्यूनल ने एक पुनर्वास योजना की रूपरेखा तैयार की थी।

इसमें निर्धारित किया कि जिन परिवारों के पास अधिग्रहित कृषि भूमि का 25% से अधिक हिस्सा है, वे उसी भूमि के क्षेत्रफल समान अपनी पसंद की सिंचाई-योग्य भूमि के हकदार होंगे। साथ ही प्रत्येक परियोजना प्रभावित व्यक्ति को निःशुल्क में एक मकान की जगह और पुनर्वास और पुनर्वास अनुदान दिया जाएगा।

पुनर्वास स्थलों पर नगरीय सुविधाएँ मुहैया कराई जाएं जिसमे प्रति 100 परिवारों के लिए एक प्राथमिक विद्यालय, एक पंचायत घर, एक डिस्पेंसरी, एक बीज भंडार, एक बच्चों का पार्क, एक गांव का तालाब और प्रति 500 परिवारों के लिए एक धार्मिक स्थान; प्रति कॉलोनी को मुख्य सड़क से जड़ने वाला पहुंच मार्ग, विद्युतीकरण, स्वच्छता व्यवस्था आदि शामिल हैं।

न्यायालय ने पुनर्वास योजनाओं की निगरानी और कार्यान्वयन के लिए एजेंसियों और तंत्रों के एक विस्तृत नेटवर्क की उपस्थिति पर गौर किया।

नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण

1979 के प्राधिकरण फैसले के परिणामस्वरूप गठित इस निकाय ने निम्नलिखित कार्य किए:

- "सरदार सरोवर परियोजना (एसएसपी) और इंदिरा (नर्मदा) सागर परियोजना (आईएसपी) की जलमग्न भूमि के संबंध में भूमि अधिग्रहण की प्रगति की निगरानी करना।
- संबंधित राज्यों में एसएसपी और आईएसपी से प्रभावित गांवों में परियोजना प्रभावित परिवारों के पुनर्वास की कार्य योजना के कार्यान्वयन की प्रगति की निगरानी करना।
- समय-समय पर पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन (Rehabilitation and Resettlement) कार्य योजना की समीक्षा करना।
- पुनर्स्थापन और पुनर्वास के मामले में प्रगति की निगरानी और मूल्यांकन के संबंध में प्रत्येक राज्य द्वारा सौंपी गई एजेंसियों की रिपोर्ट की समीक्षा करना।
- भारत सरकार और पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा पर्यावरणीय दृष्टिकोण से आईएसपी और एसएसपी को दी गई मंजूरी को ध्यान में रखते हुए, बांध की ऊंचाई बढ़ाने के साथ-साथ पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की निगरानी और समीक्षा करना।
- पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन में शामिल राज्यों/एजेंसियों के समन्वय का काम करना।
- एसएसपी और आईएसपी के कार्यक्रम के मामले में पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन सम्बंधित कोई भी गतिविधियाँ शुरू करना।"

परियोजना से प्रभावित परिवारों को अपनी चिंताओं को व्यक्त करने में सक्षम बनाने के लिए गुजरात, मध्य प्रदेश और राजस्थान के तीन राज्यों में शिकायत निवारण प्राधिकरण स्थापित किए गए थे।

न्यायालय ने निम्नलिखित दिशा निर्देश जारी किये:

1. "बांध का निर्माण प्राधिकरण के फैसले के अनुसार जारी रहेगा।"
2. "90 मीटर से अधिक ऊँचाई के बांध को बढ़ाने की अनुमति, समय-समय पर नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण द्वारा उप-समूह और पर्यावरण उप-समूह से उपरोक्त अनुमति प्राप्त होने के बाद ही दी जाएगी।

राहत और पुनर्वास उप-समूह ने 90 मीटर तक के निर्माण को मंजूरी दे दी है, जिसे तुरंत आरंभ किया जा सकता है। ऊँचाई को आगे बढ़ाने की अनुमति केवल राहत और पुनर्वास के कार्यान्वयन के साथ होगी और राहत और पुनर्वास उप-समूह की स्वीकृति के बाद ही होगी। राहत और पुनर्वास उप-समूह तीनो शिकायत निवारण प्राधिकरण (Grievances Redressal Authorities) से परामर्श करके आगे के निर्माण की स्वीकृति देगा।"

3. "भारत सरकार, पर्यावरण और वन मंत्रालय के अधीन स्थित पर्यावरण उप-समूह, बांध के निर्माण के प्रत्येक चरण पर और 90 मीटर के पार निर्माण के लिए आगे काम करने की अनुमति देने के लिए पर्यावरण स्वीकृति (Environmental Clearance) देखेगा।"

4. "शिकायत निवारण प्राधिकरणों की रिपोर्टें जिसमें खासकर मध्य प्रदेश की रिपोर्ट यह दिखाती हैं कि भूमि की पहचान, उपयुक्त भूमि का अधिग्रहण और परियोजना के तहत विस्थापित किये नागरिकों के पुनर्वास के लिए आवश्यक कदमों में बहुत सी ढिलाई है।"

5. “हम मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों को निर्देशित करते हैं कि वे उन परिवारों को राहत और पुनर्वास प्रदान करें, जिन्हें उन्होंने विस्थापित करने के लिए प्रस्तावित किया है। इन राज्यों को उन दिशानिर्देशों का पालन करना होगा जो इस संदर्भ में नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण या समीक्षा समिति या शिकायत निवारण प्राधिकरण द्वारा दिए जाते हैं।”

6. “भले ही पर्यावरण स्वीकृति के तहत लगाई गई शर्तों का व्यापक अनुपालन हुआ है, लेकिन फिर भी नर्मदा प्राधिकरण और पर्यावरण उप-समूह सुनिश्चित करेंगे कि सभी कदम न केवल पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बल्कि उसे पुनर्स्थापित और सुधारने के लिए उठाएं जाएंगे।”

7. “नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण आज से चार सप्ताह के भीतर आगे के निर्माण और राहत और पुनर्वास कार्य के संबंध में एक कार्य योजना तैयार करेगा। इस तरह की कार्य योजना एक समय सीमा तय करेगी ताकि बांध की ऊंचाई में वृद्धि के साथ राहत और पुनर्वास सुनिश्चित किया जा सके। प्रत्येक राज्य, प्राधिकरण द्वारा तैयार की गई कार्य योजना की शर्तों का पालन करेगा। किसी भी विवाद या कठिनाई के उत्पन्न होने की स्थिति में, समीक्षा समिति को प्रतिनिधित्व किया जा सकता है।हालांकि, प्रत्येक राज्य को भूमि अधिग्रहण के मामले में प्राधिकरण के निर्देशों का पालन करना होगा, जो प्राधिकरण द्वारा निर्धारित समय और सीमा के अनुसार होगा।”

8. “नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण के समक्ष किसी मुद्दे पर कोई अनसुलझा विवाद होने की स्थिति में ऐसा करने के लिए जब भी आवश्यकता होगी समीक्षा समिति की बैठक होगी। किसी भी स्थिति में समीक्षा समिति की बैठक तीन महीने में कम से कम एक बार होगी ताकि बांध के निर्माण की प्रगति और अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की निगरानी की जा सके। यदि किसी कारण से आदेश के कार्यान्वयन में गंभीर मतभेद उत्पन्न होते हैं और इसे समीक्षा समिति में हल नहीं किया जा सकता है, तो समिति इसे प्रधानमंत्री को भेज सकती है, जिसका निर्णय, अंतिम और सभी संबंधित लोगों के लिए बाध्यकारी होगा।”

9. “शिकायत निवारण प्राधिकरण पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन कार्यक्रमों के उचित कार्यान्वयन के लिए संबंधित राज्यों को उचित निर्देश जारी करने के लिए स्वतंत्र होंगे और इसके निर्देशों के गैर-कार्यान्वयन के मामले में, जी. आर. ए. उचित आदेशों के लिए समीक्षा समिति से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र होंगे।”

10. “यह देखने के लिए हर संभव प्रयास किया जाएगा कि परियोजना यथासंभव शीघ्रता से पूरी हो।”

एम.सी. मेहता बनाम कमल नाथ

मनु/एस सी/0189/2002

तथ्य

1990 में स्पैन मोटेल्स के मालिक, स्पैन मोटेल्स प्राइवेट लिमिटेड ने स्पैन क्लब के नाम से एक उद्यम शुरू किया। क्लब का निर्माण भूमि के बड़े क्षेत्रों पर अतिक्रमण करके किया गया था, जिसमें काफी वन भूमि भी शामिल थी। तत्कालीन पर्यावरण और वन मंत्री, कमल नाथ, जो स्पैन मोटेल्स से सीधे संबंध रखने के लिए जाने जाते थे और 1994 में कंपनी को भूमि को नियमित करने और लीज पर देने के लिए जिम्मेदार थे।

इस अतिक्रमण के कारण ब्यास नदी उफान पर आ गई जिसने अपना मार्ग बदल दिया और स्पैन क्लब को बहा ले गई। संबंधित प्रबंधन ने दूसरी बार नदी के मार्ग को बदलने के लिए बुलडोजर और अर्थमूवर का उपयोग किया। 1995 में भारी बाढ़ से कुल 105 करोड़ रुपये की संपत्ति को नुकसान पहुंचा था।

1996 मे न्यायालय ने एक फैसला सुनाया:

- भारत सरकार, पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा मोटल के पक्ष में पट्टानामा को दी गई मंजूरी को रद्द कर दिया गया।

- हिमाचल प्रदेश सरकार को इस क्षेत्र को अपने कब्जे में लेने और इसे इसकी मूल प्राकृतिक स्थिति बहाल करने का निर्देश दिया गया।

- मोटल को क्षेत्र के पर्यावरण और पारिस्थितिकी की बहाली के लिए लागत के रूप में मुआवजा देना होगा।

- नदी तल और ब्यास नदी के किनारों पर स्थित मोटलों द्वारा बनाए गए विभिन्न मिश्रणों से होने वाले प्रदूषण को दूर किया जाएगा और उसे उलटा किया जाएगा।

- मोटल, अनुपचारित अपशिष्टों (Untreated Affluents) को नदी में नहीं बहाएगा। निर्देश दिया गया कि हिमाचल प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड मोटल द्वारा स्थापित प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों/उपचार संयंत्रों का निरीक्षण करे। यदि मोटल द्वारा छोड़ा गया अपशिष्ट पदार्थ निर्धारित मानकों के अनुरूप नहीं है, तो मोटल के खिलाफ कानून के अनुसार कार्रवाई की जाएगी।

- हिमाचल प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ब्यास नदी में अनुपचारित अपशिष्ट पदार्थ बहाने की अनुमति नहीं देगा। बोर्ड कुल्लू-मनाली क्षेत्र में सभी होटलों या संस्थानों या कारखानों का निरीक्षण करेगा और यदि उनमें से कोई भी अनुपचारित अपशिष्ट पदार्थ को नदी में बहा रहा है, तो बोर्ड कानून के अनुसार कार्रवाई करेगा।

न्यायालय ने सार्वजनिक ट्रस्ट सिद्धांत (Public Trust Doctrine) को भी मान्यता दी, जिसका अर्थ है कि कुछ संसाधनों में निजी संपत्ति के स्वामित्व होने के बावजूद, सरकार को देश के कानून में संप्रभु (Sovereign) होने के कारण और जनता द्वारा विश्वास होने पर कुछ संसाधनों पर स्वामित्व रखना अनिवार्य रहता है ।

इस मामले पर न्यायालय ने 1996 में अपने फैसले से निर्णय लिया था और इसे प्रदूषण जुर्माने की मात्रा के निर्धारण के लिए फिर से न्यायालय लाया गया था |

कानूनी प्रश्न

इस मामले में प्रश्न प्रदूषणकर्ता की ज़िम्मेदारी की सीमा और प्रदूषण जुर्माने की मात्रा और उनसे होने वाले नुकसान की प्रकृति के बारे में था।

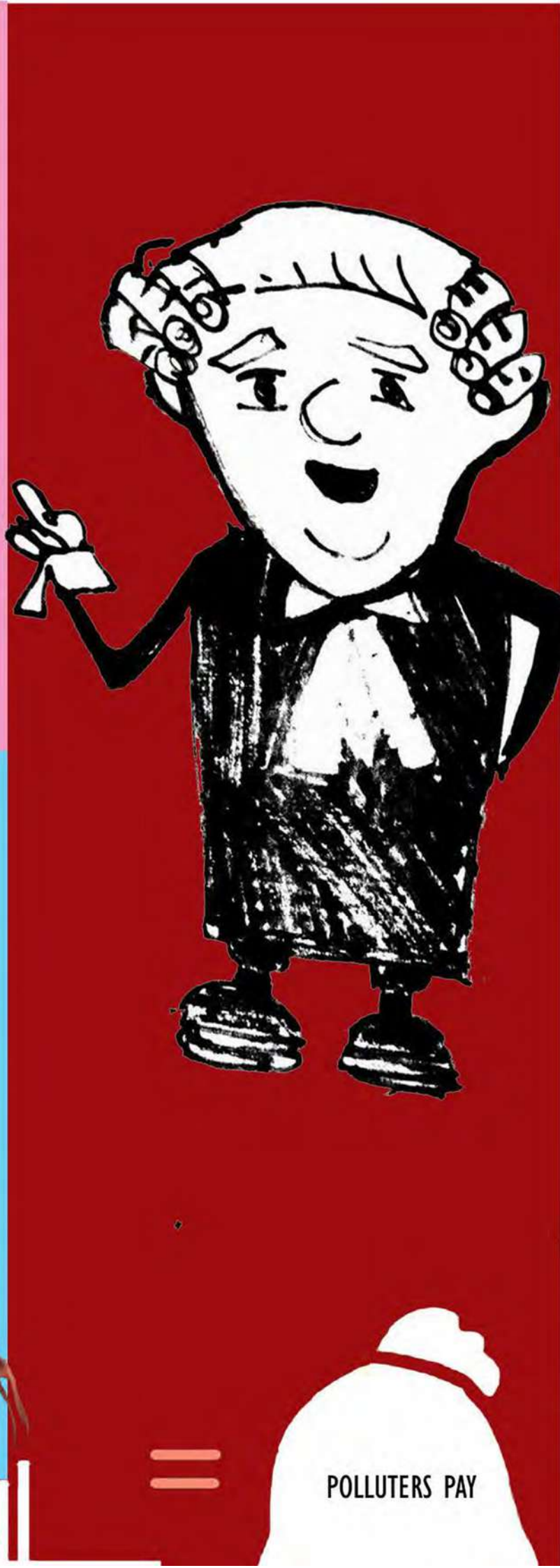

निर्णय

न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाना संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों को खतरे में डालने जैसा है। इस प्रकार का नुकसान केवल पुनर्स्थापन उद्देश्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि पीड़ितों को होने वाले मुआवजे के रूप में भी है।संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार, जीवन के लिए आवश्यक बुनियादी पर्यावरण तत्वों, हवा, पानी, मिट्टी में कोई भी गड़बड़ी जीवन के लिए खतरनाक होगी। संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अधिकारों को लागू करने के मामले में, इस न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित अधिनियमों के प्रावधानों को लागू करने के अलावा, संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत मौलिक अधिकारों को भी प्रभावी बनाया और माना कि यदि पर्यावरण में प्रदूषण करके इन अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है, तो न्यायालय न केवल पारिस्थितिक संतुलन की बहाली के लिए, बल्कि उन पीड़ितों के लिए भी क्षतिपूर्ति दे सकता है, जो पर्यावरण में बदलाव के कारण पीड़ित हुए हैं।

इस मामले में न्यायालय ने उदाहरणात्मक हर्जाना भुगतान सिद्धांत (Exemplary Damages Principle) और प्रदूषण फैलाने वाला ही भुगतान करेगा (Polluter Pays Principle) जैसे सिद्धांतों को स्थापित किया । इसमें कहा गया है, “प्रदूषण अपने स्वभाव से ही पूरे समुदाय के विरुद्ध किया गया एक अत्याचार है । इसलिए, जो व्यक्ति प्रदूषण फैलाने का दोषी है, उसे पर्यावरण और पारिस्थितिकी की बहाली के लिए हर्जाना (मुआवजा) देना होगा।” उन लोगों को भी हर्जाना देना होगा जिन्हें इस आपराधिक कृत्य के कारण नुकसान हुआ है।

अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय की शक्तियां प्रतिबंधित नहीं हैं। यह न्यायालय एक जनहित याचिका या रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं को हर्जाना दे सकता है जैसा कि न्यायालय ने पूर्व में दिये गये निर्णयों की एक श्रृंखला में घोषित किया है। उपरोक्त नुकसान के अलावा, प्रदूषण फैलाने के दोषी व्यक्ति को दूसरे द्वारा भुगते हुए घाटे का भुगतान करने के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है ताकि यह दूसरों के लिए किसी भी तरह से प्रदूषण न फैलाने के लिए एक भयपरतीकारी (Deterrent) के रूप में कार्य कर सके।

परिणामस्वरूप स्पैन होटल्स पर उदाहरणात्मक हर्जाना के रूप में 10 लाख रुपये का जुर्माना लगाया गया।

भारत संघ
बनाम
असोसिएशन फॉर डेमोक्रॅटिक रिफॉर्म्स

मनु/एस सी/0394/2002

तथ्य

भारत संघ ने उच्च न्यायालय के उस आदेश को चुनौती देते हुए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसमें चुनाव आयोग को मतदाताओं को उम्मीदवारों की शैक्षिक और आपराधिक इतिहास के साथ-साथ उनकी संपत्ति और ऋण के बारे में जानकारी देने का निर्देश दिया गया था।

कानूनी प्रश्न

1. क्या मतदाताओं को चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के ज़रूरी विवरण जानने का अधिकार है?
2. क्या चुनाव आयोग को उच्च न्यायालय के आदेशानुसार निर्देश जारी करने का अधिकार है?

निर्णय

न्यायालय ने कहा कि नागरिकों को सार्वजनिक पदाधिकारियों और पद के उम्मीदवारों के बारे में जानने का अधिकार है, जिसमें उनकी संपत्ति और आपराधिक और शैक्षिक तथ्य भी शामिल है। यह अधिकार संविधान के तहत बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में निहित है। मतदाताओं को उम्मीदवारों के इतिहास के बारे में जानने का अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने कहा कि-

“हमारी राय में यदि निरक्षर मतदाताओं को उचित रूप से चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के बारे में जानकारी दी जाती है, तो उनका निर्णय उम्मीदवार के चयन में उसके खुद के बनाये मानदंडों पर आधारित होगा। देश के लिए समय-समय पर चुनाव कुशल शासन और लोकतंत्र में नागरिकों के लाभ के लिए आयोजित करे जाते हैं। सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप में मतदाताओं का अत्यधिक महत्व है।”

न्यायालय ने कहा कि मतदाताओं को सूचना का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के दायरे में लाते हुए कहा कि:

“हमारे संविधान का अनुच्छेद 19(1)(ए) बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। चुनाव के मामले में मतदाताओं के भाषण या अभिव्यक्ति में उनके द्वारा वोट डालना भी शामिल है। इस वाक्य के कहने का तात्पर्य यह है कि मतदाता द्वारा वोट दिया जाना अपनी बात कहने या अभिव्यक्त करने समान है, जिसके लिए मतदाताओं को उम्मीदवार के बारे में जानकारी होना आवश्यक है।”

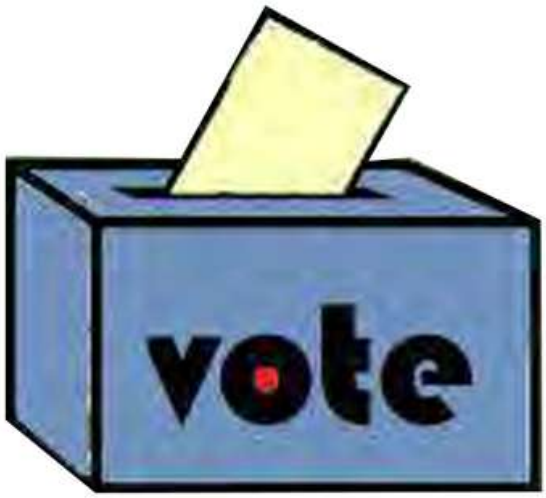

भारत के संविधान के अनुच्छेद 324, जो कि चुनाव आयोग को नागरिकों को उम्मीदवारों के बारे में जानकारी का अधिकार सुरक्षित करने के लिए निर्देश जारी करने की शक्ति देता है, का हवाला देते हुए न्यायालय ने कहा कि:

“जिस मामले में जहां कानून के प्रावधान शांत हैं, वहाँ अनुच्छेद 324 स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के उद्देश्य के लिए कार्य करने की शक्ति का भंडार है। संविधान ने इस लोकतंत्र में अपने आप को एक जीवंत प्राणी के तौर पर तैयार करा है, जिससे जब भी भविष्य में नयी स्थिति आती है ऐसे समय में अवशिष्ट शक्ति (Residuary Powers) के प्रयोग की गुंजाइश रहता है। इसका कारण यह है कि हर आकस्मिकता की कानूनों या नियमों द्वारा कल्पना नहीं कर सकते हैं। इसीलिए जब भी कोई सवाल आता है जहाँ कोई भी कानून का अस्तित्व नहीं है , यह आयोग ऐसी परिस्थिति में आकर आवश्यक निर्देश दे सकता है।”

manupatra®
JUSTICE adda

भूतपूर्व कैप्टन हरीश उप्पल बनाम भारत संघ एवं अन्य

मनु/एस सी/1141/2002

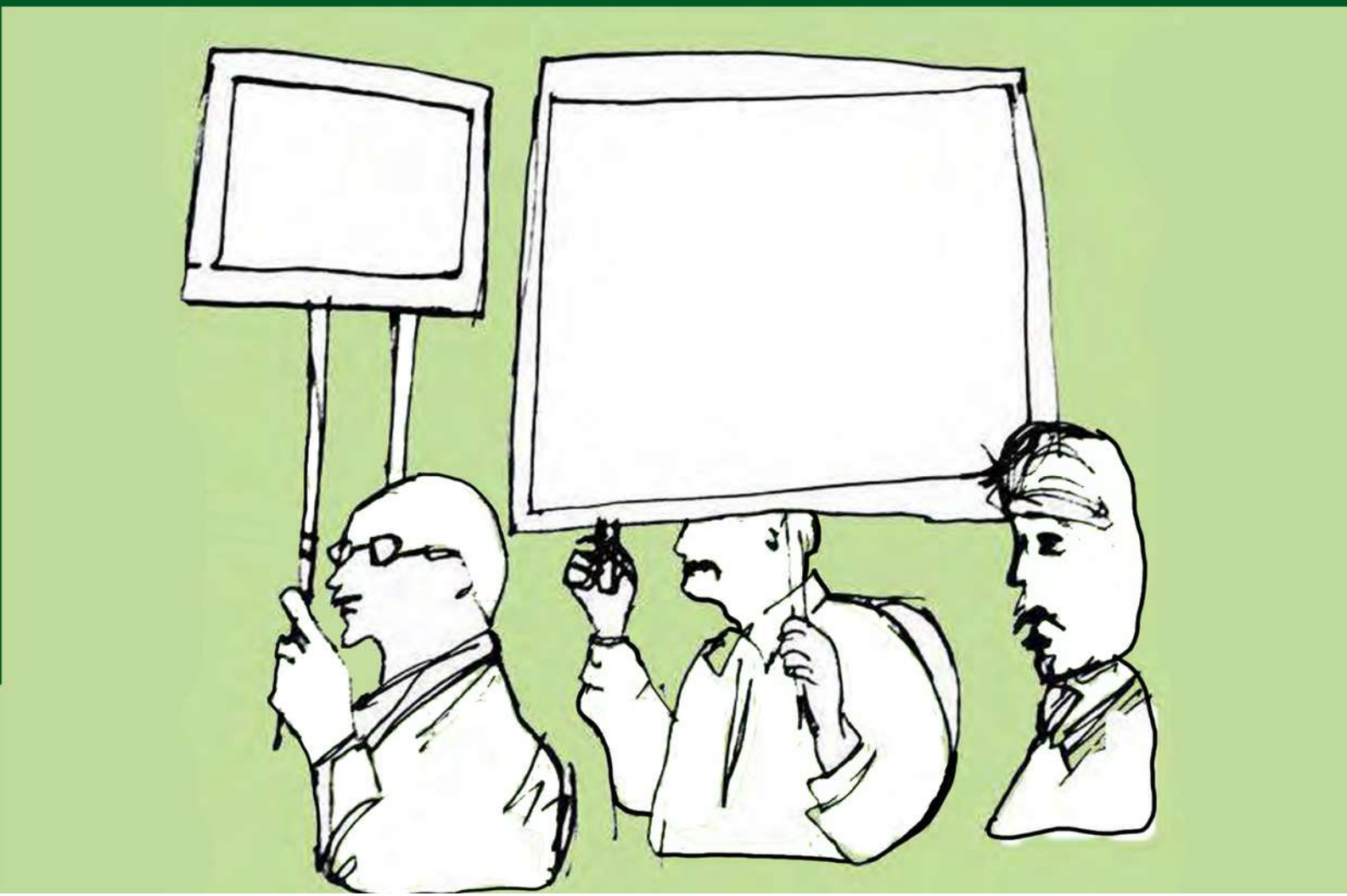

तथ्य

इन सभी याचिकाओं में वकीलों की हड़ताल / बहिष्कार के आह्वान को अवैध घोषित करने की मांग की गई थी।

कानूनी प्रश्न

क्या वकीलों को हड़ताल करने या न्यायालयों के बहिष्कार का आह्वान करने का अधिकार है?

निर्णय

न्यायालय ने कहा कि वकीलों की हड़ताल अवैध और अनैतिक है। मामलों की सुनवाई और निर्णय करने के न्यायालय के दायित्व को स्वीकार करते हुए पीठ ने कहा कि न्यायालय किसी मामले को केवल इसलिए स्थगित नहीं कर सकता क्योंकि वकील हड़ताल पर हैं। यदि वकील, या कोई पक्ष न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है, तो कानून में अपेक्षित आवश्यक परिणाम भुगतने होंगे।

न्यायालयों के सुचारू कामकाज को सुनिश्चित करने में बार काउंसिल की भूमिका के बारे में न्यायालय ने कहा कि बार काउंसिल को न्यायालयों की गरिमा बनाए रखनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई गैर-पेशेवर व्यवहार और आचरण न हो।

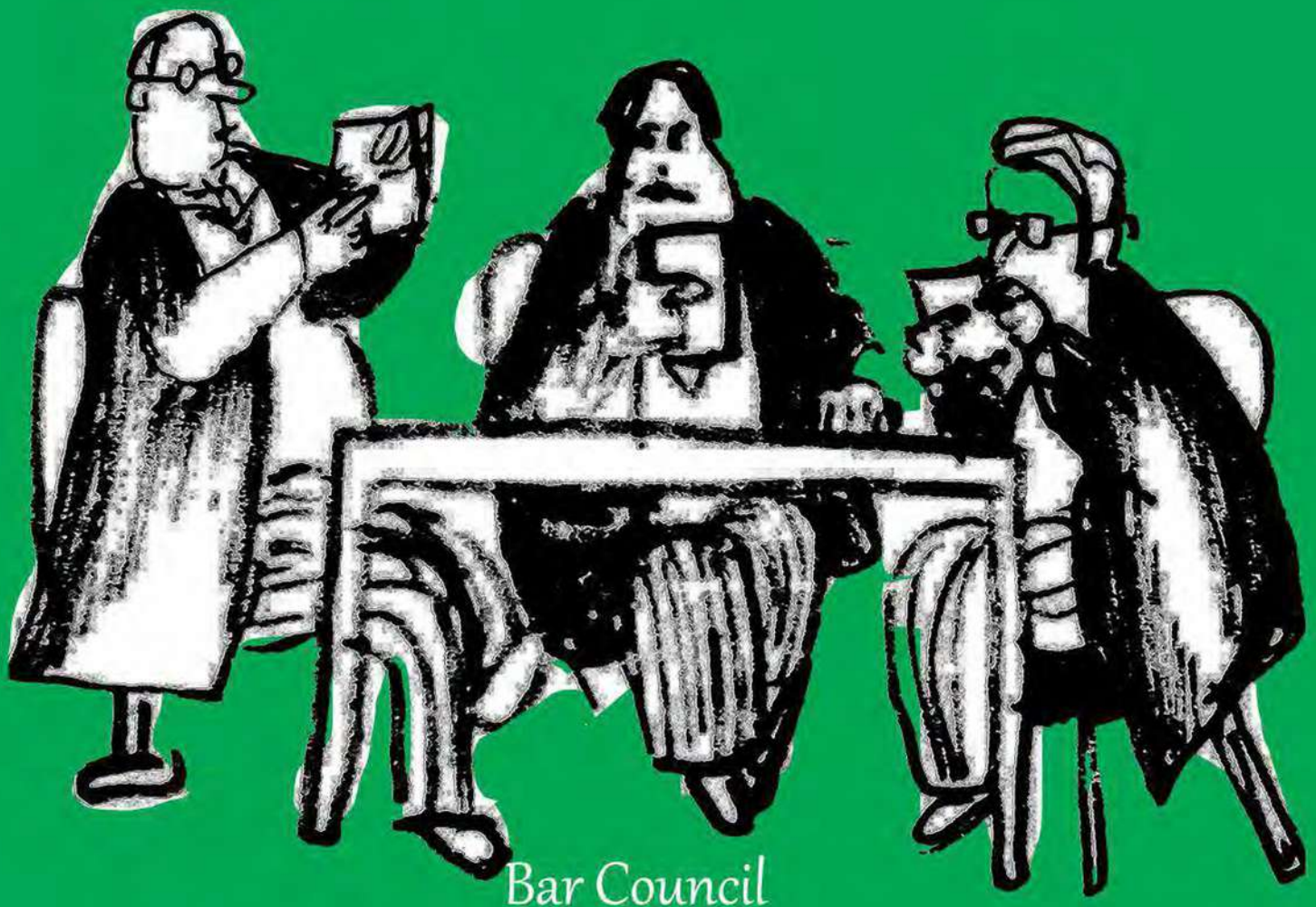

संविधान के अनुच्छेद 145 और अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30 क्रमशः सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति देता है। इन प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने बार को चेतावनी दी कि न्यायालयों को बार की शक्तियों से ऊपर नियम बनाने पड़ सकते हैं जिसमें गैर-पेशेवर व्यवहार के दोषी अधिवक्ताओं के आचरण से निपटा जा सके।

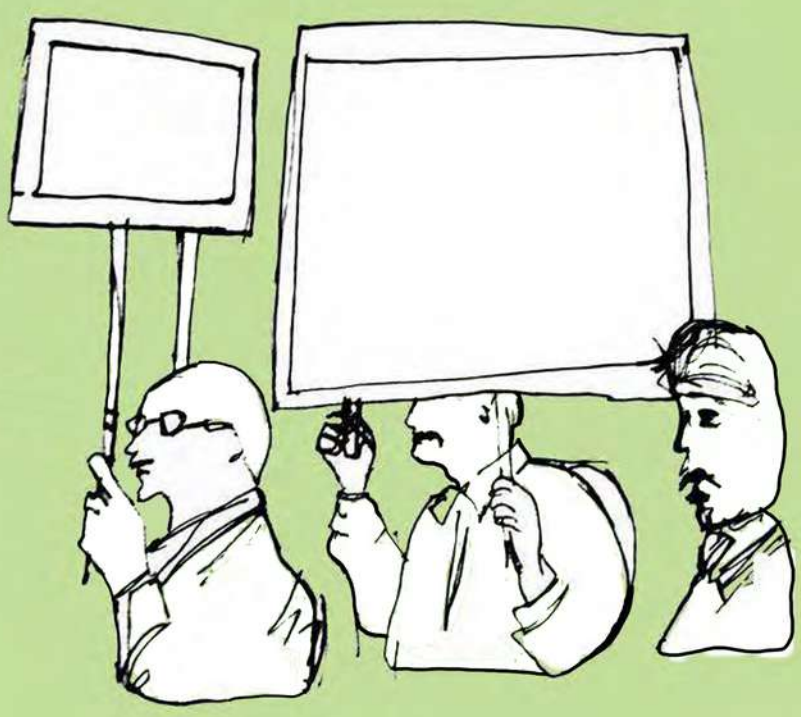

इसलिए, न्यायालय ने माना कि नागरिकों को हड़ताल करने का अधिकार है जिसका प्रयोग किसी दुर्लभ स्थिति में किया जा सकता है। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिवक्ताओं के हड़ताल करने के अधिकार को प्रतिबंधित कर कहा की वह न्याय के प्रशासन में अभिन्न भागीदार हैं। हालाँकि यह हड़ताल का अधिकार बाकि सभी वर्गों और समूहों के लिए मान्य और वैध रहेगा।

पीपलस् यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीस बनाम भारत संघ और अन्य

मनु/एस सी/0234/2003

तथ्य

भारत संघ बनाम असोसिएशन फॉर डेमोक्रॅटिक रिफॉर्म्स मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि मतदाताओं को चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के इतिहास के बारे में जानने का अधिकार है। इस तरह के अधिकार को लागू करने के आदेश में न्यायालय ने चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए चुनाव आयोग को अपने आपराधिक रिकॉर्ड, उनकी शिक्षा और संपत्ति और देनदारियों के बारे में जानकारी प्रस्तुत करना अनिवार्य कर दिया। हालाँकि, जन प्रतिनिधित्व संशोधन अधिनियम 2002 (Representation of Peoples Amendment Act, 2002) के साथ, विधायिका ने लोकतांत्रिक सुधार मामले में दिए गए निर्देशों को रद्द कर दिया।

वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33बी की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी, जिसमें उम्मीदवार के आपराधिक तथ्य के प्रकटीकरण (Disclosure) को जनता के सामने दिखाने से सीमित कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने इस धारा को संविधान के 19(1)(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नागरिकों के अधिकार के लिए अपर्याप्त और उल्लंघनकारी पाया।

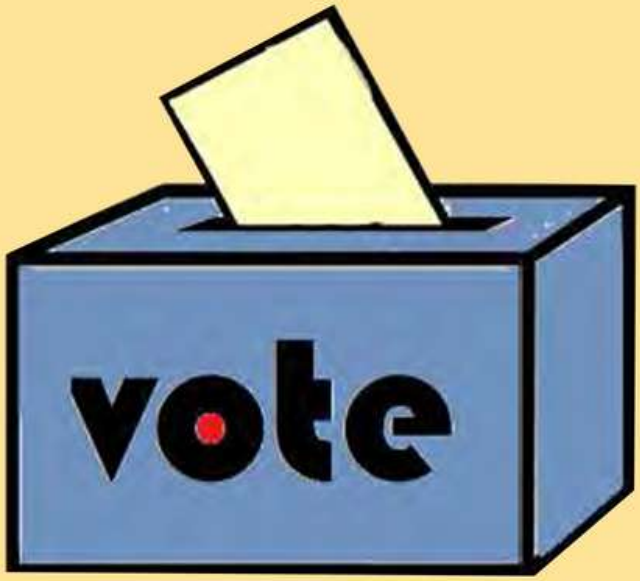

कानूनी प्रश्न

- क्या जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33बी में आपराधिक तथ्य के खुलासे को सीमित करने के लिए अनुच्छेद 19(1) का उल्लंघन करता है?
- क्या संसद ने डेमोक्रॅटिक रिफॉर्म्स मामले में इस न्यायालय द्वारा चुनाव आयोग को दिए गए निर्देशों के खिलाफ जाकर अपनी क्षमता से परे काम किया?

निर्णय

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने लोकतंत्र में मतदाता के महत्व को पहचानते हुए इस बात पर जोर दिया कि अनुच्छेद 19(1)(ए) में मतदाताओं को अपने उम्मीदवारों के बारे में बुनियादी जानकारी रखने का अधिकार शामिल है। यह माना गया कि भले ही वोट देने का अधिकार मौलिक अधिकार न हो, लेकिन धारा 19(1)(ए) तहत वोट डालना व्यक्तिगत राय की अभिव्यक्ति समान है।

उम्मीदवारों के बारे में नागरिकों के सूचना के अधिकार और उम्मीदवारों की निजता के अधिकार(Right to Privacy) को संतुलित करने की आवश्यकता को पहचानते हुए न्यायालय ने माना कि सार्वजनिक मामलों, शासन और व्यक्तिगत जीवन से संबंधित प्रकटीकरण को मापदंडो के साथ लागू करने की आवश्यकता है। इसके अलावा यह माना गया कि उम्मीदवारों की गोपनीयता का अधिकार से ऊपर सार्वजनिक हित के प्रति अधिकार है।

हालाँकि न्यायालय ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स केस में दिए गए निर्देश अस्थायी प्रकृति के हैं, लेकिन साथ में यह भी कहा गया कि विधायिका को उनके द्वारा कवर किए गए विषय पर कानून बनाते समय उन निर्देशों पर उचित महत्व देना चाहिए।

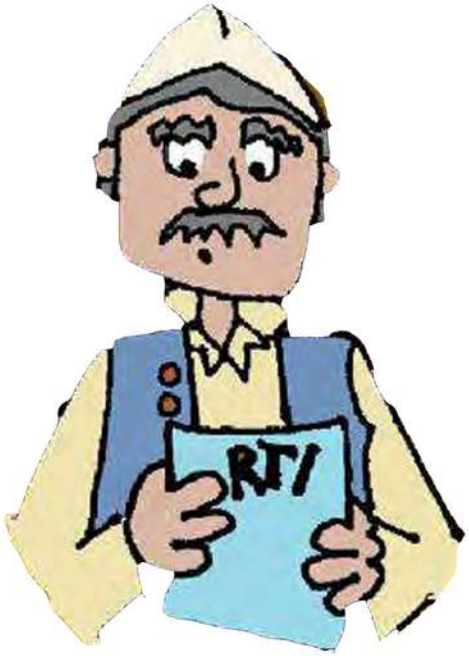

न्यायालय ने विवादित कानून की धारा 33बी को असंवैधानिक पाया। न्यायालय ने अपने निर्णय के लिए निम्नलिखित कारण दिये:

“सूचना के अधिकार को अटक कर रखने और स्थिर होने के बजाय बढ़ने दिया जाना चाहिए, लेकिन धारा 33बी का अधिदेश और गैर-अबाधित खंड (Non Obstante Clause) द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए अनुकूल ऐसी जानकारी को आने से रोकता है ।

धारा 33बी की निंदा किए जाने का दूसरा कारण यह है कि केवल संशोधन द्वारा विशेष रूप से प्रदान किए गए प्रकटीकरण का दायरा सीमित कर देता है, जिसके कारण संसद सूचना के महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रभावी बनाने में विफल रही। इस पहलु में संपत्तियों और ऋण के बारे में जानकारी देना भी शामिल था। इस प्रकार यह संशोधन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के एक भाग के रूप में सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने में पर्याप्त रूप से विफल रहा।

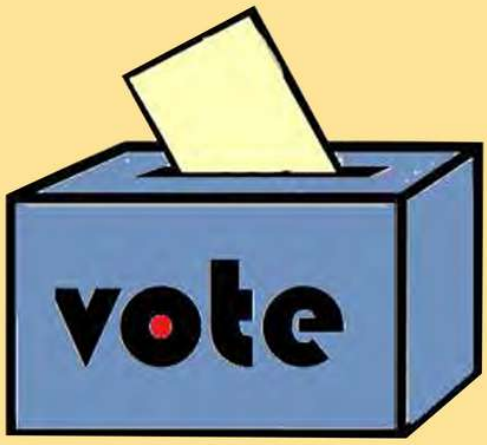

सूचना का अधिकार जो अब विधायिका द्वारा प्रदान किया गया है बहुत ही आवश्यक बिंदु है, लेकिन संपत्ति और निवास से संबंधित अन्य आवश्यक पहलू की अनदेखी करने से अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार का हनन हो सकता है । इससे सूचना का दायरा नागरिकों के लिए बहुत सीमित रह जाता है जिससे अनुच्छेद 19(1)(ए) का हनन होता है ।"

न्यायालय ने विशिष्ट पहलुओं के संबंध में उम्मीदवारों के बारे में सूचना के अधिकार पर निम्नलिखित चर्चा करी -

- **उम्मीदवारों के खिलाफ आपराधिक तथ्य और लंबित आपराधिक मामले-** न्यायालय ने पाया कि संसद ने आपराधिक तथ्य के संबंध में जो प्रावधान यानी जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33ए लायी थी, वह पर्याप्त थी।
- **संपत्तियां और ऋण का खुलासा-** न्यायालय ने नागरिकों के सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए संपत्तियों और ऋण के खुलासे को आवश्यक पाया। न्यायालय ने आगे कहा कि:

"उम्मीदवार की आर्थिक स्थिति के बारे में सार्वजनिक जागरूकता से यह राय बनाने में काफी मदद मिलेगी कि क्या उम्मीदवार ने कार्यालय में चुनाव के बाद या तो अपने नाम पर या परिवार के सदस्य, पति या पत्नी और आश्रित बच्चों के नाम पर संपत्ति अर्जित की थी। जब उम्मीदवार पुन: चुनाव चाहता है, तो नागरिक/मतदाता चुनाव से पहले और बाद की संपत्ति का तुलनात्मक विचार कर सकते हैं ताकि यह आंकलन किया जा सके कि क्या उच्च सार्वजनिक पद का उपयोग संभवत: खुद की उन्नति के लिए किया गया था। संयोग से, यह खुलासा जल्दी पैसा कमाने के लिए सत्ता के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने का काम करेगा - एक ऐसी बीमारी, जिससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि यह हमारे लोकतांत्रिक राष्ट्र के राजनीतिक स्पेक्ट्रम में व्याप्त है। ऋण के संबंध में खुलासे से मतदाता को अन्य बातों के साथ-साथ यह जानने में मदद मिलेगी कि क्या उम्मीदवार के पास सार्वजनिक आर्थिक संस्थानों या सरकार को देय बकाया है। ऐसी जानकारी का उम्मीदवार के पहले किये गए व्यवहार और सार्वजनिक धन के साथ लेनदेन के स्वभाव पर असर पड़ता है।"

- **शैक्षिक योग्यताएँ-** न्यायालय ने किसी उम्मीदवार की शैक्षिक योग्यता के बारे में जानकारी के खुलासे को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) से प्राप्त सूचना के अधिकार का आवश्यक घटक नहीं पाया।

रामेश्वर प्रसाद और अन्य
बनाम
भारत संघ और अन्य

मनु/एस सी/0399/2006

तथ्य

2005 में बिहार विधानसभा के चुनावों के बाद कोई भी दल बहुमत सरकार नहीं बना सका। ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लगाने के लिए एक अधिसूचना (Notification) जारी की गई और विधानसभा को निलंबित रखा गया। बाद में, सत्ता हासिल करने के उद्देश्य से खरीद-फरोख्त और बड़े पैमाने पर दलबदल (Defection) की आशंका जताते हुए, राज्यपाल ने 27 अप्रैल और 21 मई को राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की।

राज्यपाल की रिपोर्ट के बाद राष्ट्रपति ने एक आदेश द्वारा प्रथम बैठक के पहले ही विधानसभा को भंग कर दिया।

संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत विधानसभा को भंग करने के राष्ट्रपति के आदेश की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए रिट याचिकाएं दायर की गई।

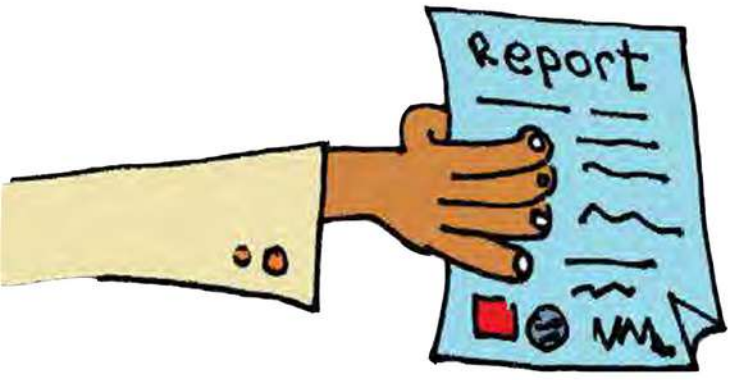

कानूनी प्रश्न

- क्या संविधान के अनुच्छेद 174(2)(बी) के तहत प्रथम बैठक हुए बिना ही विधानसभा को भंग करने की अनुमति है?
- क्या बिहार विधानसभा को भंग करने की 23 मई 2005 की घोषणा अवैध और असंवैधानिक है?
- यदि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो क्या पहले की मौजूदा स्थिति पर लौटना आवश्यक है?
- राज्यपाल को प्रतिरक्षा (Immunity) प्रदान करने वाले अनुच्छेद 361 का दायरा क्या है?

निर्णय

न्यायालय ने कहा निर्णय दिया कि 'विधानसभा की अवधि' (Duration of Assembly) और 'विधानसभा के उचित गठन' (Due Constitution of Assembly) के बीच अंतर है। अनुच्छेद 172 'विधानसभा की अवधि' से संबंधित है, जबकि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 'विधानसभा के उचित गठन' से संबंधित है। ऐसा कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है, जो प्रथम बैठक से पहले विधानसभा को भंग करने पर रोक लगाता है। बिहार विधानसभा का गठन जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के तहत किया गया था। इस प्रकार याचिकाकर्ता का यह तर्क कि विधानसभा को प्रथम बैठक से पहले भंग नहीं किया जा सकता है को खारिज कर दिया गया ।

राज्यपाल की अवैध तरीकों से बहुमत पाने के प्रयासों के आधार पर विधानसभा को भंग करने का आदेश देने की, शक्ति को खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहा कि

“यदि इस प्रकार के कृत्य अनुच्छेद 356 के तहत असाधारण शक्ति का इस्तेमाल कर के लाये जाते हैं, तो इससे विधानसभा भंग करने को बढ़ावा मिलेगा और इसके दूरगामी और खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। यह तरीका चुनाव के बाद के गठबंधनों और पुनर्गठनों को अनैतिक कहकर भी इस्तेमाल किया जा सकता है । इसके फलस्वरूप देश या राज्य को एक और चुनाव कराने के लिए मजबूर किया जा सकता है।”

इस मामले में विधानसभा को भंग करने का आदेश असंवैधानिक पाया गया। जब राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रही है तो ‘प्रासंगिक कारणों (Relevant materials)’ के आधार पर संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है । हालाँकि राज्यपाल की रिपोर्ट, जिसके आधार पर राष्ट्रपति ने 23 मई को आदेश जारी किया था, अप्रासंगिक (Irrelevant) पाई गई।

“राष्ट्रपति को अनुच्छेद 356 द्वारा मिली गयी शक्ति एक सशर्त शक्ति है। वैध कारणों का होना एक पूर्व शर्त है और इस मामले मे राज्यपाल की रिपोर्ट इन कारणों में शामिल की जा सकती है।”

“निर्विवाद रूप से, राज्यपाल को संविधान और कानूनों को संरक्षित करने का कर्तव्य सौंपा गया है और लोकतंत्र को संरक्षित रखना उनका कर्तव्य और दायित्व है । इसी दायित्व के अंतर्गत, राजनीतिक दलबदल और अन्य अनैतिक बाधाओं को लोकतंत्र के चलन मे बाधा डालने से रोकना राज्यपाल का कर्तव्य है। लेकिन वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर, हम यह स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि राज्यपाल ने 27 अप्रैल और 21 मई, 2005 की रिपोर्टों द्वारा उपरोक्त उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। राज्यपाल के साथ यह मानने के लिए कोई भी कारण नहीं था जिससे वो यह दर्शा सके कि राजनीतिक दलों का पुनर्गठन वैध नहीं था। इसके अलावा हम यह भी नहीं कह सकते कि इस मामले में लोकतंत्र में सेंध लगा दलबदल कर अनुचित, अवैध, अनैतिक और असंवैधानिक तरीके अपनाये गए थे।”

घोषणा की असंवैधानिकता के बावजूद, न्यायालय विधानसभा को पहले जैसा नहीं कर सका क्योंकि चुनाव प्रक्रिया पहले ही शुरू हो चुकी थी। अनुच्छेद 361 द्वारा प्रदान की गई राज्यपाल की प्रतिरक्षा के दायरे के संबंध में, न्यायालय ने कहा कि राज्यपाल को यही शक्ति प्राप्त है जिसके प्रयोग के लिए वह किसी भी न्यायालय के प्रति जवाबदेह नहीं है।

हालांकि, न्यायालय ने एक बार फिर यही कहा कि अनुच्छेद 361(1) राज्यपाल की कार्रवाई की वैधता की जांच करने की न्यायालय की शक्ति को नहीं छीनता है, चाहे यह जाँच दुर्भावपूर्ण(Mala Fide) के आधार पर ही क्यों न की जा रही हो?

स्वामी श्रद्धानंद
बनाम
महाराष्ट्र राज्य
मनु/एस सी/3096/2008

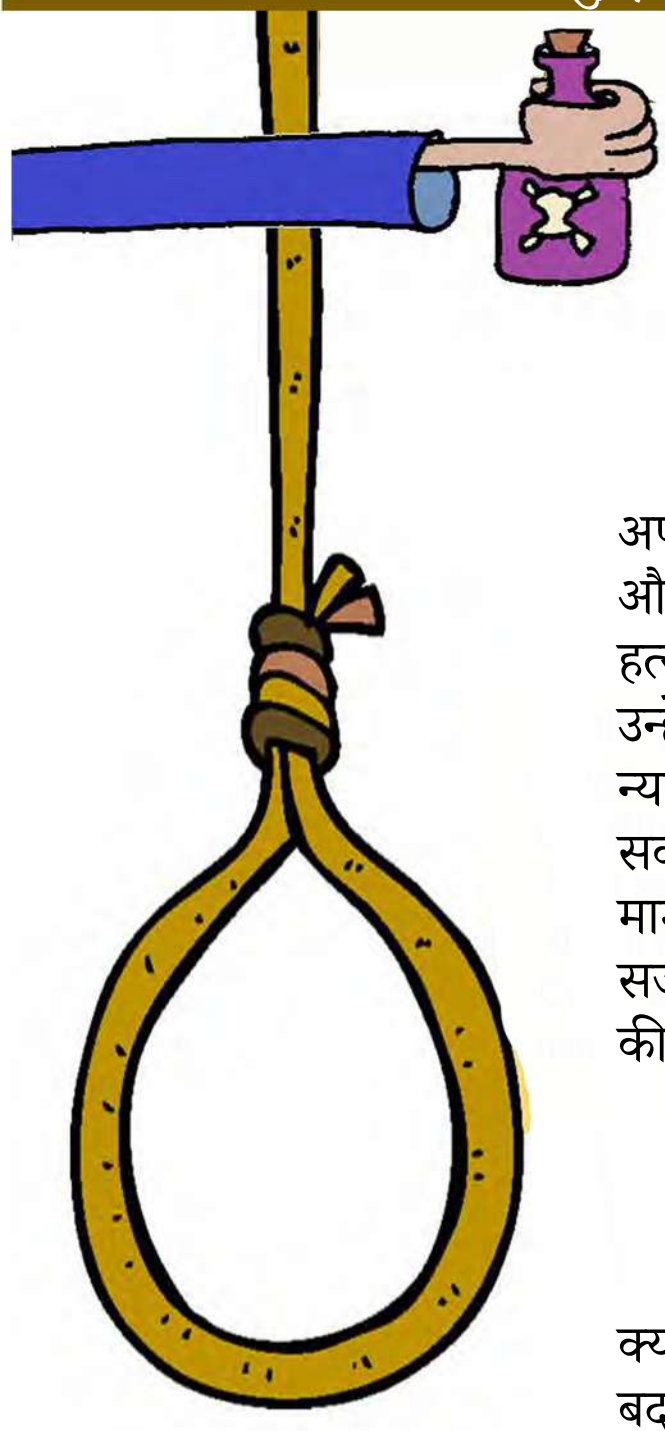

तथ्य

अपीलार्थी को उसकी पत्नी को नशीली दवा खिलाकर और जिंदा दफनाने और उसके परिणामस्वरूप उसकी हत्या का दोषी ठहराया गया था। सत्र न्यायालय ने उन्हें हत्या के जुर्म में मौत की सजा सुनाई थी। उच्च न्यायालय ने उनकी मौत की सजा की पुष्टि की। सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने मामले पर एक विभाजित निर्णय दिया, अतः मौत की सजा की समीक्षा के लिए मामले को तीन न्यायाधीशों की पीठ को भेजा गया।

कानूनी प्रश्न

क्या मौत की सजा को किसी अन्य कम सजा में बदला जा सकता है?

निर्णय

बच्चन सिंह मामले में पारित निर्णय को देखते हुए और उसको फिर से दोहराते हुए, न्यायालय ने वर्तमान मामले में मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया। बच्चन सिंह मामले में निर्धारित दुर्लभतम मामलो में या 'रेयरेस्ट ऑफ द रेयर केस (Rarest of the Rare case)' मानक के बारे में न्यायालय ने कहा कि-

"इस मामले की सच्चाई यह है कि मृत्युदंड का सवाल व्यक्तिपरक तत्व (Subjective Element) से मुक्त नहीं है और इस न्यायालय द्वारा मृत्युदंड की पुष्टि या इसे कम करना पीठ में उपस्थित न्यायाधीशों की व्यक्तिगत समझ पर निर्भर करता है।"

हालाँकि, न्यायालय ने कहा कि 14 साल का कारावास जो आजीवन कारावास के लिए दिया जाता है, इस मामले में अपर्याप्त होगा। इस सन्दर्भ में न्यायालय ने कहा कि-

"एक विशेष प्रकार की सजा बनाई जानी चाहिए, ताकि मृत्यु दण्ड का कम से कम और दुर्लभ मामलों या 'ररेस्ट ऑफ़ रेयर' मामलों मे इस्तेमाल हो सके। यह सजा भले ही बहुत कम मामलो मे इस्तेमाल होगी परन्तु यह भी सुनिश्चित करेगी कि क़ानून में लिखित मौत की सजा केवल दुर्लभ मामलों में ही दी जाए। यह केवल बच्चन सिंह मामले में संविधान पीठ के फैसले का पुनर्कथन (Restatement) होगा, परन्तु यह सजा दण्डविधान (Penology) में आधुनिक रुझानों के अनुरूप होगा।"

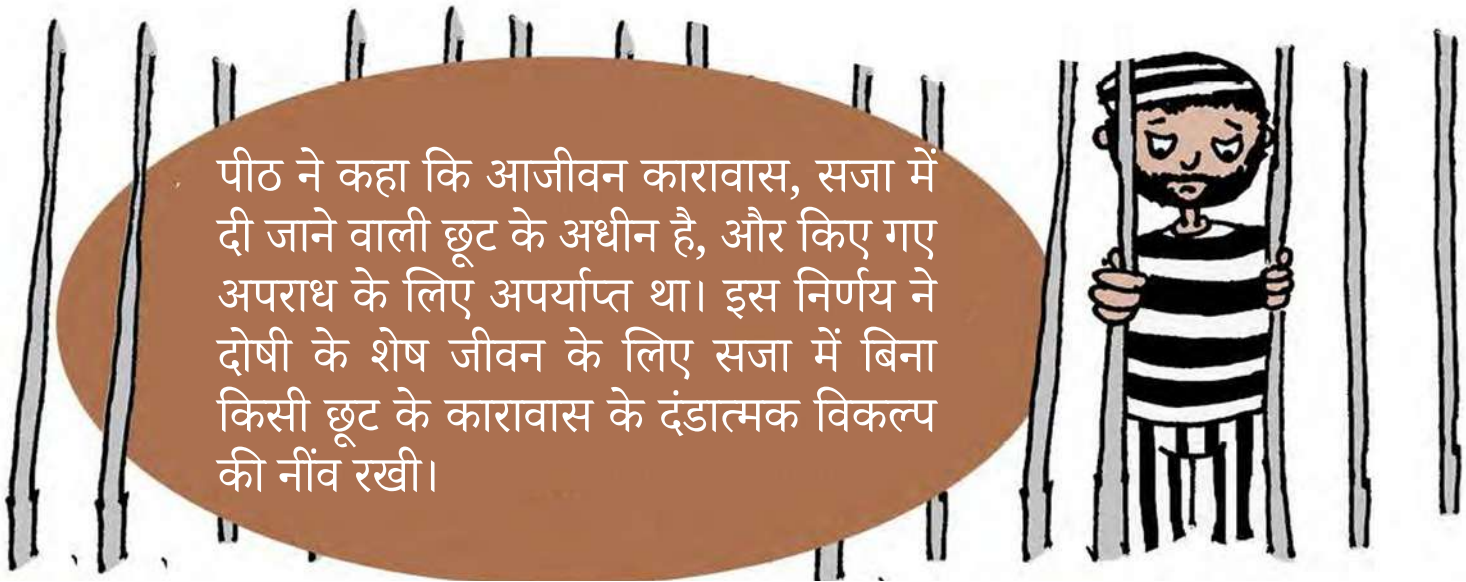

सेल्वी बनाम कर्नाटक राज्य

मनु/एस सी/0325/2010

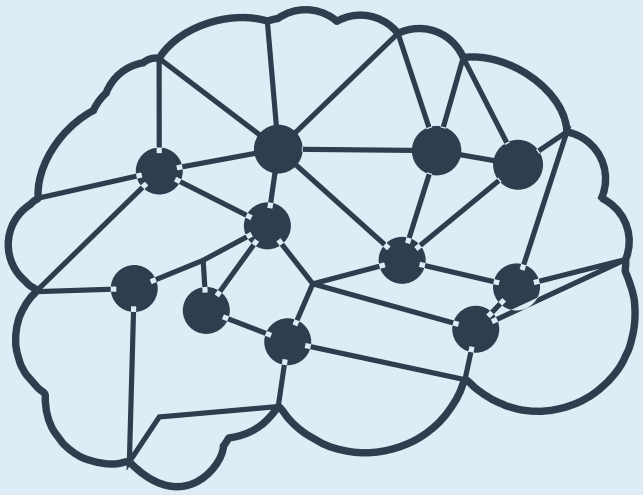

तथ्य

अपीलार्थी सेल्वी की बेटी ने अपने परिवार की इच्छा के विरुद्ध एक अलग जाति के व्यक्ति से शादी की थी। 2004 में उस व्यक्ति की बेरहमी से हत्या कर दी गई थी। सेल्वी को अन्य दो लोगों के साथ इस मामले का संदिग्ध बनाया गया । इस मामले में अभियोजन (Prosecution) पक्ष ने न्यायालय से तीन व्यक्तियों पर पॉलीग्राफ और ब्रेन मैपिंग परीक्षण करने की अनुमति की मांग की और न्यायालय ने यह अनुमति दे दी।

जब इन परीक्षणों के परिणामों में धोखाधड़ी दिखाई दी, तो अभियोजन पक्ष ने तीन व्यक्तियों पर नार्कोएनालिसिस कराने की अनुमति की मांग की, जिसे भी न्यायालय ने मंजूरी दे दी। तीनों व्यक्तियों ने इन तकनीकों को अनुमति दिये जाने वाले फैसले को कर्नाटक उच्च न्यायालय में चुनौती दी लेकिन राहत पाने में विफल रहे। इसके बाद उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की।

इस केस में उन प्रक्रियाओं के संबंध में आपत्तियां उठाई गईं जहां जांच में आरोपी, संदिग्ध या गवाहों को उनकी सहमति के बिना कई वैज्ञानिक तकनीकों में शामिल करा जाता है । इन प्रक्रियाएं में नार्कोएनालिसिस, ब्रेन इलेक्ट्रिकल एक्टिवेशन प्रोफाइल (बी. ई. ए. पी.), फंक्शनल मैग्नेटिक रेजोनेंस इमेजिंग (एफ. एम. आर. आई.) और पॉलीग्राफ जैसे परीक्षण शामिल हैं।

कानूनी प्रश्न

- क्या आपराधिक मामलों में जांच-पड़ताल में सुधार के उद्देश्य से आरोपी की सहमति के बिना वैज्ञानिक तकनीक, जैसे नार्कोएनालिसिस, पॉलीग्राफ परीक्षा और ब्रेन इलेक्ट्रिकल एक्टिवेशन प्रोफाइल (बी. ई. ए. पी.) परीक्षण का इस्तेमाल करना नागरिकों के मौलिक अधिकारों के दायरे में आता है?

- क्या अनैच्छिक रूप से ऐसी तकनीकों का उपयोग करना 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता'(अनुच्छेद 21) पर एक उचित प्रतिबंध है?

- **आत्म-दोषारोपण (Self Incrimination) का सवाल:** क्या ये परीक्षण अनुच्छेद 20 (3) के द्वारा दिये गये अधिकार के दायरे में संरक्षित हैं जो कहता है कि किसी भी व्यक्ति को अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा?

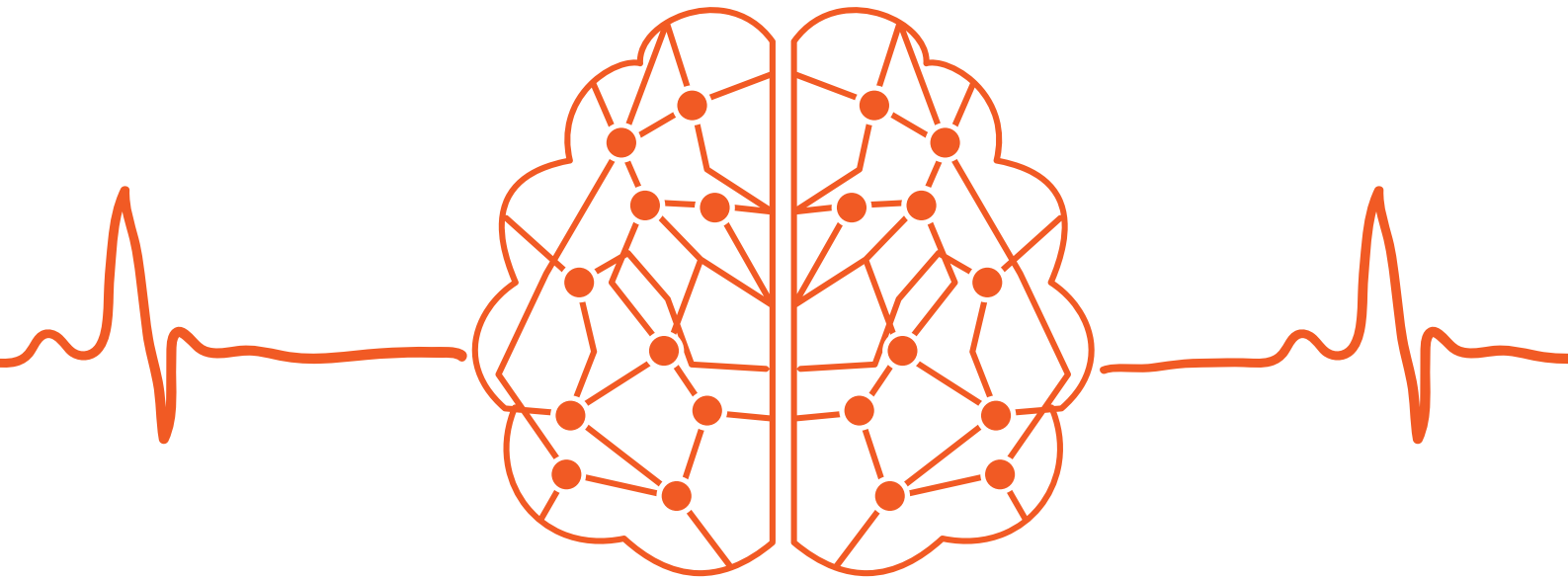

निर्णय

न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि ब्रेन मैपिंग, पॉलीग्राफ और इस तरह के अन्य परीक्षण अनिवार्य करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 20(3) का उल्लंघन हैं। जानकारी प्राप्त करने के लिए उपयोग किए जाने वाले ऐसे परीक्षण अनुच्छेद 20(3) के तहत आत्म-दोषारोपण के बराबर होंगे, और इसीलिए इन्हें साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 20(3) किसी व्यक्ति के बोलने और चुप रहने के विकल्प की रक्षा करता है, भले ही बाद में दी गई गवाही में दोष साबित हो या नहीं। अनुच्छेद 20 (3) का उद्देश्य एक मामले में व्यक्तिगत ज्ञान के जबरन हस्तांतरण को रोकना है। प्रत्येक विवादित परीक्षण से प्राप्त परिणामों का स्वभाव एक प्रमाण या गवाही के सामान (Testimonial Nature) है। और इन परिणामों को मुख्य साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उल्लंघन पर, न्यायालय ने कहा,

“हमारा मानना है कि किसी भी व्यक्ति को जबरन विवादित तकनीक के अधीन नहीं किया जाना चाहिए, चाहे वह आपराधिक मामलों में जांच के संदर्भ में हो या किसी और कारण से। ऐसा करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता में अनुचित हस्तक्षेप के बराबर होगा। हालाँकि हम आपराधिक न्याय के संदर्भ में इन तकनीकों के स्वैच्छिक रूप से उपयोग करने की अनुमति देते हैं, बशर्ते कि इन तकनीकों के ख़िलाफ़ कुछ सुरक्षा उपाय किए गए हों।”

अपराधियों को लाभान्वित करने वाले इस तरह के निर्णय के प्रश्न को संबोधित करते हुए, न्यायालय ने कहा,

“यह तर्क सही है कि इस निर्णय से लाभान्वित होने वाले कुछ पक्ष कट्टर अपराधी हैं जिन्हें सामाजिक मूल्यों के लिए कोई सम्मान नहीं है। हालाँकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संवैधानिक निर्णय केवल तथ्यों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि पूरी आबादी के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों को ध्यान मे रखते हुए लिए जाते हैं।”

अरुणा रामचंद्र शानबाग
बनाम
भारत संघ

मनु/एस सी/0176/2011

तथ्य

मुंबई के किंग एडवर्ड्स मेमोरियल अस्पताल में काम करने वाली एक नर्स अरुणा शानबाग का अस्पताल में काम करने वाले एक सफाईकर्मी ने शारीरिक और यौन उत्पीड़न किया था। परिणामस्वरूप अरुणा शानबाग का ब्रेन डैमेज हो गया। वह जीवन के लिए आवश्यक कार्यों को करने में असमर्थ हो गई थी।

अरुणा 36 वर्षों से परमानेंट वेजटेटिवे स्टेट (PVS: इस अवस्था में व्यक्ति का दिमाग काम नहीं करता और व्यक्ति कुछ भी काम नही कर पाता है) में पड़ी हुई थी। इसके बाद पिंकी विरमानी ने अरुणा की ओर से एक रिट याचिका दायर की और न्यायालय से अनुरोध किया कि वह प्रतिवादी को अरुणा को खाना खिलाने से रोके और उसे शांति से अपने जीवन को खत्म करने की अनुमति दी जाए।

कानूनी प्रश्न

- यदि कोई व्यक्ति परमानेंट वेजटेटिवे स्टेट में है, तो क्या जीवन-रक्षक उपचारों को रोकने या वापस लेने की अनुमति होनी चाहिए?

- यदि किसी रोगी ने पहले पी. वी. एस. के मामले में जीवन-रक्षक उपचार नहीं करने की इच्छा व्यक्त की है, तो क्या स्थिति खराब होने पर उसकी इच्छाओं का सम्मान किया जाना चाहिए?

- यदि किसी व्यक्ति ने पहले ऐसी इच्छा व्यक्त नहीं की है, लेकिन उसके परिवार या रिश्तेदार, व्यर्थ जीवन-रक्षक उपचारों को रोकने या वापस लेने का अनुरोध करते हैं, तो क्या उनकी इच्छाओं का सम्मान किया जाना चाहिए?

सक्रिय इच्छामृत्यु
(Active Euthanasia)
इसमें रोगी की मृत्यु के लिए घातक पदार्थों के उपयोग शामिल हैं। घातक इंजेक्शन जानलेवा बीमारी से जूझने वाले व्यक्ति को दिया जाता है जो बहुत पीड़ा में है।

निष्क्रिय इच्छामृत्यु
(Passive Euthanasia)
इसमें जीवन की समाप्ति के लिए चिकित्सा उपचार को रोकना शामिल या दिए गए जीवन रक्षक उपचारों को वापस ले लेना है, उदाहरण के लिए, गुर्दे से सम्बंधित गंभीर बीमारी वाले व्यक्ति के जीने के लिए आवश्यक डायलिसिस मशीन के उपयोग को रोकना या इस मशीन को हटा देना।

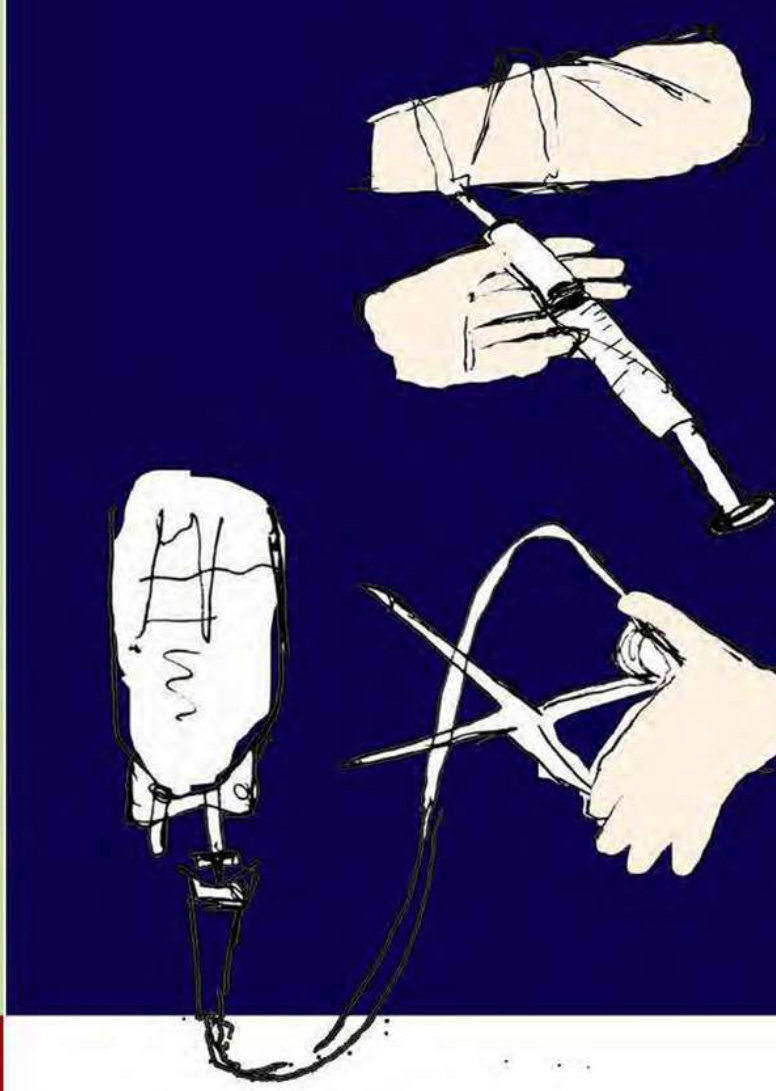

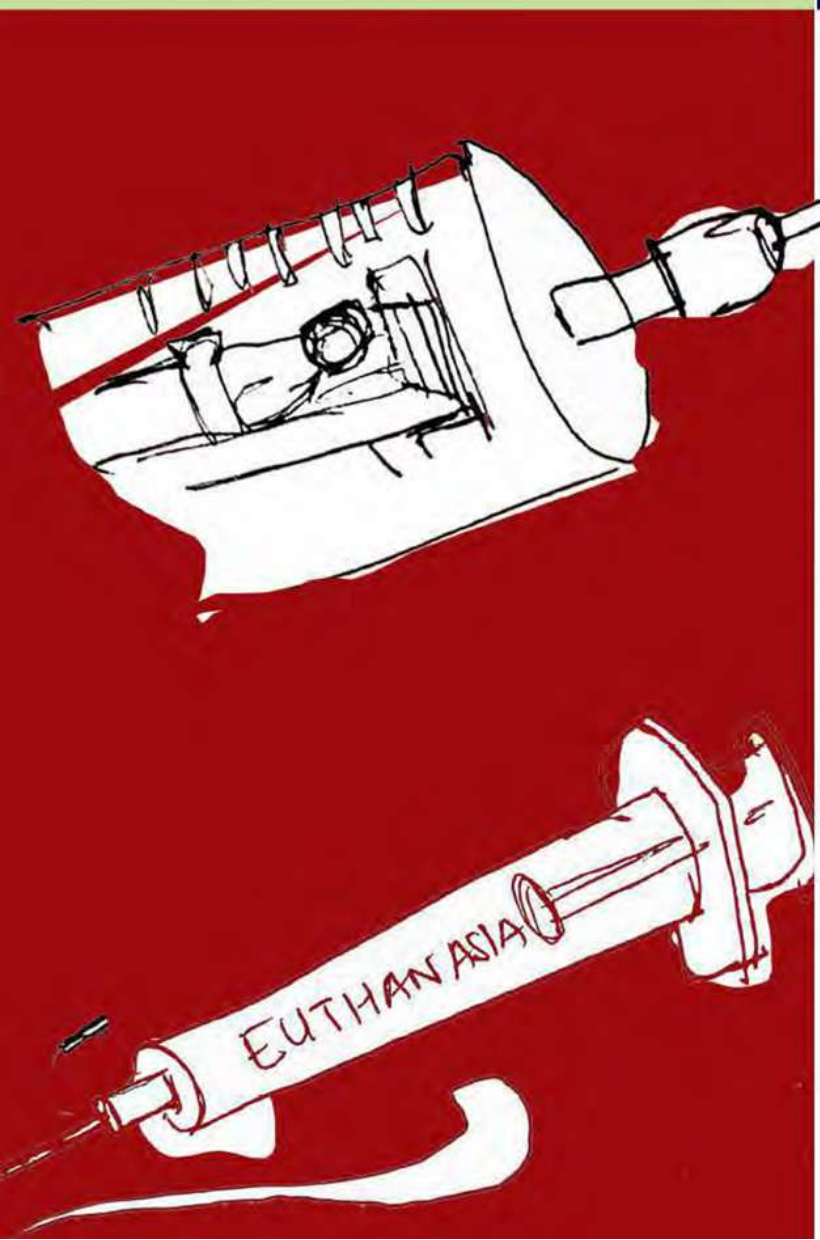

निर्णय

सक्रिय इच्छामृत्यु वह है, जिसमें मरीज़ की मृत्यु के लिये कुछ अतिरिक्त चीज़ की जाए ।निष्क्रिय इच्छामृत्यु वह है जहाँ मरीज़ की जान बचाने के लिये कुछ न किया जाए।

इसके अलावा स्वैच्छिक इच्छामृत्यु वह है जहाँ रोगी से सहमति ली जाती है, जबकि गैर-स्वैच्छिक इच्छामृत्यु वह है जहाँ सहमति नहीं होती है, यानी जब रोगी कोमा में होता है, या अन्यथा सहमति देने में असमर्थ होता है। न्यायालय ने सक्रिय इच्छामृत्यु को अवैध माना है और निष्क्रिय इच्छामृत्यु को कानूनी माना।

लाइफ सपोर्ट वापस लेने के लिए आवेदन और उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया।

आवेदक से आवेदन प्राप्त होने पर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश कम से कम दो न्यायाधीशों की एक पीठ का गठन करेंगे।

अपना निर्णय देने से पहले पीठ को तीन प्रतिष्ठित डॉक्टरों की समिति से राय लेनी होगी, जिसमें से एक न्यूरोलॉजिस्ट, एक को मनोचिकित्सक और तीसरे को फिजीशियन चिकित्सक होना चाहिए।

समिति रोगी के स्वास्थ्य रिकॉर्ड की जांच करने और अस्पताल के कर्मचारियों के विचार लेने के बाद पीठ को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी। उच्च न्यायालय पीड़ित के रिश्तेदारों को नोटिस जारी करेगा और उनकी राय पर विचार करेगा।

न्यायालय रोगी के हित को ध्यान में रखते हुए चिकित्सकों के साथ-साथ रिश्तेदारों के विचारों पर विचार करने के बाद ही अपना निर्णय देगा।

सोसाइटी फॉर अनएडिड प्राइवेट स्कूल्ज ऑफ़ राजस्थान बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0311/2012

तथ्य

भारत के संविधान में अनुच्छेद 21(ए) जोड़कर, 86वें संविधान संशोधन के माध्यम से बच्चों की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (आर. टी. ई. अधिनियम) लाया गया था, जिसके तहत सरकार को 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना ज़रूरी था , इसके निजी स्कूलों में वंचित वर्गों (Backward) के बच्चों के लिए सीटों का 25% का आरक्षण (कोटा) भी प्रदान किया गया।

सोसाइटी फॉर अनएडिड प्राइवेट स्कूल्स ने आरटीई अधिनियम की धारा 12 की संवैधानिकता को यह तर्क देते हुए चुनौती दी कि प्राइवेट स्कूलों से विशेष नियमों का पालन करने की अपेक्षा करने की यह विधि संविधान के अनुच्छेद 19 और किसी भी पेशा करने के उनके अधिकार का उल्लंघन करेगी। यह संविधान के अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यको के अपने स्कूल संचालित करने के अधिकार का भी उल्लंघन करेगा।

कानूनी प्रश्न

- क्या यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) का उल्लंघन करता है, जो प्रत्येक नागरिक को किसी भी पेशे या व्यवसाय का करने का अधिकार देता है?
- क्या यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 30 का उल्लंघन है, जो अल्पसंख्यको के निजी स्कूलों की स्थापना और प्रशासन के अधिकार की रक्षा करता है?

निर्णय

न्यायालय ने 2009 के इस अधिनियम के बारे में बात करते हुए कहा कि इसका उद्देश्य मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को न्यायसंगत (Justiciable) बनाना है । न्यायालय ने माना कि यह अधिनियम एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना करता हैं जिसमें प्रत्येक बच्चे को उसके नज़दीकी स्कूल तक पहुंचाया जा सके। सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा (Universal Elementary Education) लोकतंत्र के सामाजिक ताने-बाने को मजबूत करने में एक अहम् भूमिका निभा सकती है।

“शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कई अलग-अलग कारक शामिल होते हैं:

- वह जो शिक्षा प्रदान करता है (शिक्षक, एक शिक्षा संस्थान का मालिक, माता-पिता);
- वह जो शिक्षा प्राप्त करता है (छात्र) ;
- और वह जो शिक्षा देने के लिए कानूनी रूप से जिम्मेदार है (माता-पिता, कानूनी अभिभावक, समाज और राज्य)।”

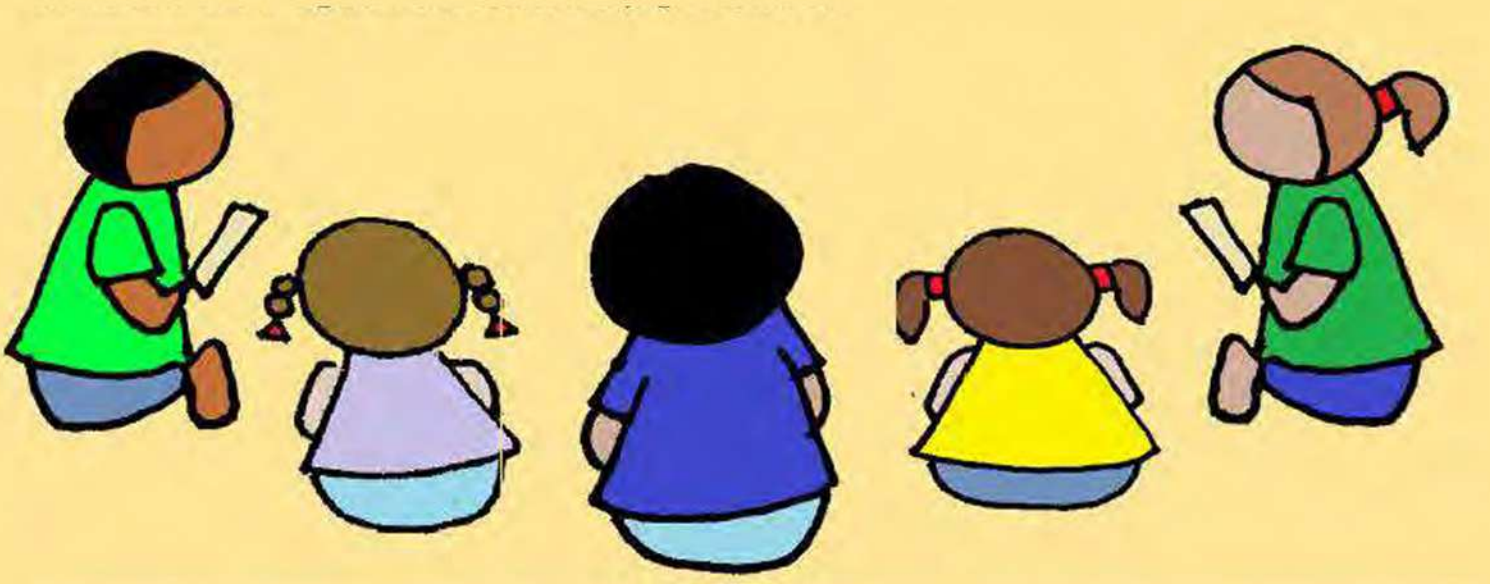

ये कारक शिक्षा के अधिकार को प्रभावित करते हैं।

न्यायालय ने निजी और सरकारी स्कूलों में अनिवार्य कोटा की संवैधानिकता को बरकरार रखा। सरकार संवैधानिक रूप से निजी स्कूलों से 25% सीटों को आरक्षित करने की मांग कर सकती है। न्यायालय ने तर्क दिया कि आर.टी.ई अधिनियम 'बाल केंद्रित है न कि संस्थान केंद्रित' है , जिसका अर्थ है कि अधिनियम के तहत बच्चों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करना प्राथमिकता है, भले ही इससे निजी स्कूल पर बोझ पड़े। न्यायालय ने आगे कहा कि,

"बच्चों के अधिकारों की प्राथमिक जिम्मेदारी इसीलिए सरकार की है। सरकारों को बच्चों के अधिकारों का सम्मान करना होगा, उनकी रक्षा करनी होगी और उन्हें पूरा करना होगा। बच्चों की देखभाल करने वाले निजी संस्थानों का परीक्षण करना, बच्चों को हिंसा या दुर्व्यवहार से बचाना, बच्चों को आर्थिक शोषण, खतरनाक काम करने से बचाना और बच्चों के साथ मानवीय व्यवहार सुनिश्चित करना भी राज्य का कर्तव्य है।"

न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 30 के तहत स्थापित निजी स्कूलों और निजी अल्पसंख्यक स्कूलों के बीच अंतर निर्धारित किया। न्यायालय ने तर्क दिया कि निजी अल्पसंख्यक स्कूलों को 25% कोटा लागू करने के लिए बाध्य करना संविधान के अनुच्छेद 30 का उल्लंघन करेगा, जिसके अंतर्गत हर अल्पसंख्यक संस्था को अपने संस्थानों को अपनी तौर तरीके से प्रशासित करने का अधिकार है।

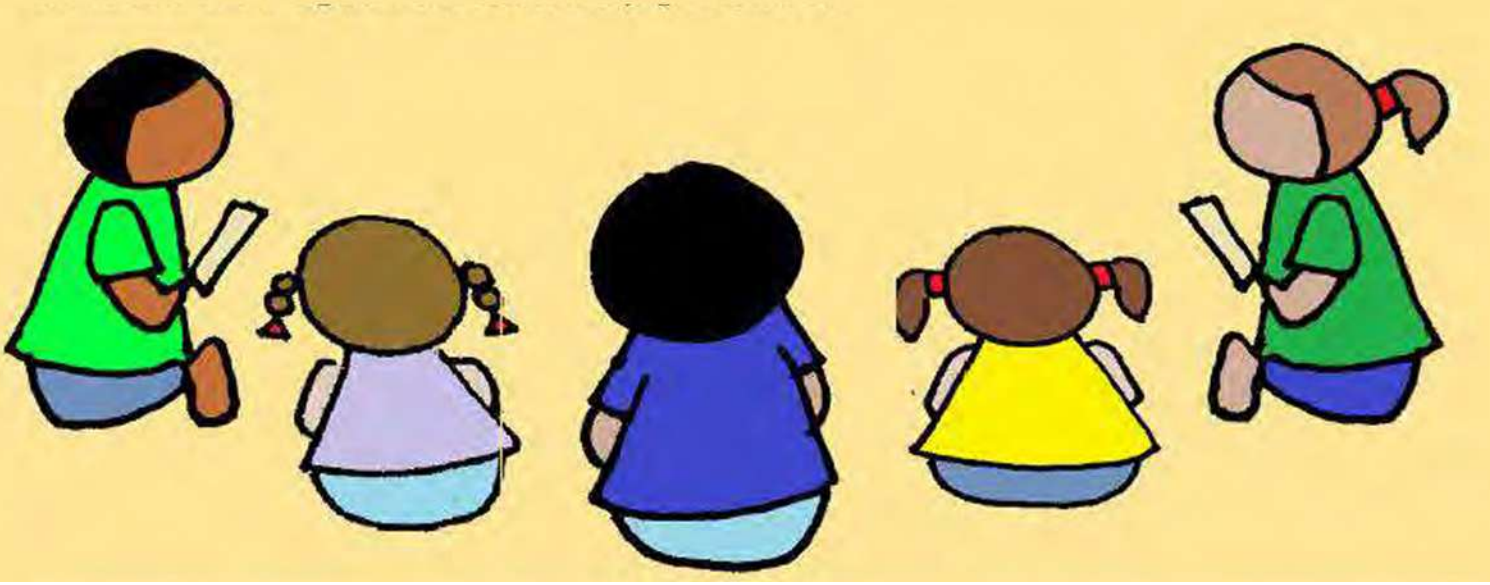

नोवार्टिस ए.जी.
बनाम
भारत संघ एवं अन्य

मनु/एस सी/0281/2013

तथ्य

1998 में, एक दवा कंपनी, नोवार्टिस ने बीटा क्रिस्टलआईन रूप (Beta Crystalline form) में इमैटिनिब मेसिलेट (Imatinib Mesylate) साल्ट के एक विशिष्ट परिवर्तन के लिए पेटेंट का आवेदन पेश किया। इमैटिनिब मेसिलेट का उपयोग पुराने माइलॉइड खून के कैंसर (Myeloid Leukemia) के इलाज के लिए किया जाता है और नोवार्टिस इसे "ग्लीवेक" के ब्रांड के रूप में इसे बेच रहा था।

2005 में, भारतीय पेटेंट अधिनियम में संशोधन, जो 1 जनवरी, 2005 को प्रभाव में आया, जिसमें भारत सरकार ने धारा 3(डी) को अपनाया। इस धारा के अंदर किसी ज्ञात पदार्थ के नए रूपों से जुड़े आविष्कारों को पेटेंट देने की अनुमति देने को मना किया गया। इसके साथ यह जोड़ा गया कि पेटेंट तभी मिलेगा जब तक उसमें ज्ञात पदार्थों से महत्वपूर्ण रूप से भिन्नता हो और वह पुराने पदार्थों से ज्यादा प्रभावी हो।

नोवार्टिस ने धारा 3(डी) की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए कहा था कि यह 2007 में मद्रास उच्च न्यायालय में डब्ल्यूटीओ ट्रिप्स (WTO TRIPS) समझौते के तहत तय किए गए विश्वव्यापी बौद्धिक संपदा मानक (Worldwide Intellectual Property Standards) के खिलाफ था, जिसे बाद में खारिज कर दिया गया था।

2013 में, नोवार्टिस ने मद्रास उच्च न्यायालय के फैसले के आधार पर भारतीय पेटेंट कार्यालय द्वारा अस्वीकृति के खिलाफ एक विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

कानूनी प्रश्न

इस मामले में सवाल भारतीय पेटेंट (संशोधन) अधिनियम 2005 की धारा 3(डी) के दायरे के संबंध में था; क्या यह आविष्कार इसके प्रावधानों के अनुसार था? यदि यह आविष्कार इसके दायरे में आता है, तो क्या यह अधिनियम में प्रदान किए गए नवीनता (Novelty) और नवाचार (Innovation) के परीक्षणों कसौटी पर खरा उतरता है?

निर्णय

न्यायालय ने निर्धारित किया कि इमैटिनिब मेसिलेट का बीटा क्रिस्टलआईन रूप, भारतीय पेटेंट अधिनियम की धारा 3(डी) के परीक्षण में विफल रहा।

क्या नया पदार्थ धारा 3(डी) के अंतर्गत आता है? इस सवाल पर न्यायालय ने कहा कि चूंकि उत्पाद केवल ज्ञात पदार्थ का एक नया रूप है, इसलिए धारा 3(डी) आकर्षित होती है और इस के प्रावधानों को पूरी तरह मानना चाहिए।

धारा 3(डी) में पेटेंटिंग मानदंडों को पदार्थों के प्रभावी होने के साथ जोड़ा गया था। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि ज्यादा प्रभावी होने का तात्पर्य केवल शारीरिक प्रभावकारिता के आधार पर नहीं है, बल्कि उसके साथ साथ यह भी देखना पड़ेगा कि उन पदार्थों की चिकित्सीय प्रभावकारिता (Therapeutic Efficacy) भी है। न्यायालय ने इस चिकित्सीय प्रभावकारिता को स्पष्ट करते हुए कहा कि हर दवा की चिकित्सीय प्रभावकारिता को सख्ती से और संकीर्ण (Narrowly) रूप से आंका जाना चाहिए।

न्यायालय ने पुष्टि की कि भारत ने अमेरिका या यूरोपीय संघ की तुलना में दवा निर्माताओं के पेटेंटिंग को अधिक सख्त तरीके से अपनाया है। भारत में एक पेटेंट आवेदक को केवल यह दिखाना काफी नहीं होगा कि नया पदार्थ पुराने पदार्थ से भौतिक घटक (Physical Components) में अलग है, बल्कि यह भी दिखाना होगा कि नए पदार्थों में संशोधन के परिणामस्वरूप रोगी के उपचार (चिकित्सीय प्रभावकारिता) में सुधार होता है। न्यायालय ने माना कि नोवार्टिस ऐसा करने में असफल रहा था।

manupatra®

JUSTICE adda

लिली थॉमस बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0687/2013

तथ्य

इस मामले में दो जनहित याचिकाएं दायर की गईं, जिनमें जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8 की उप-धारा (4) को भारत के संविधान के दायरे से बाहर (Ultra Vires) घोषित करने के प्रति मांग की गयी। यह दोनों धारा दोषसिद्ध (Convicted) सांसदों, विधायकों और एम.एल.सी को अपने पदों पर बने रहने की अनुमति देते है यदि कि वे विचारण न्यायालय (Trial Court) द्वारा किए गए फैसले की तारीख से तीन महीने के भीतर, उच्च न्यायालयों में अपनी सजा के खिलाफ अपील करें।

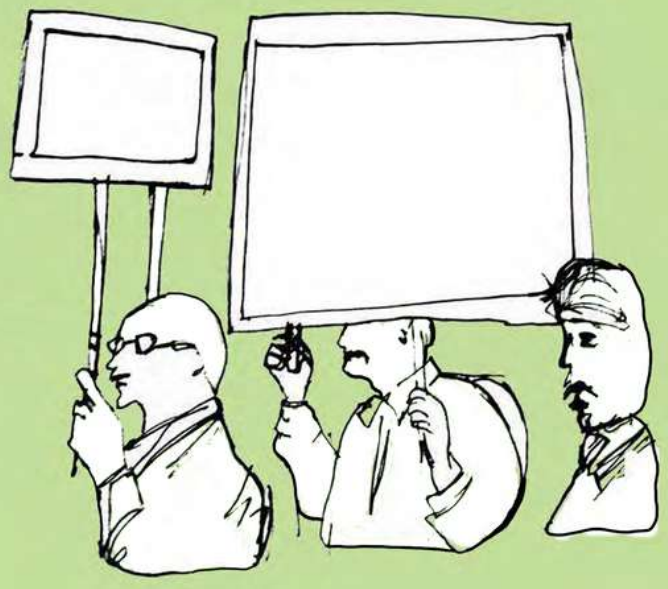

कानूनी प्रश्न

- क्या संसद के पास जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8 की उप-धारा (4) को लागू करने की विधायी शक्ति है?
- क्या जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8 की उप-धारा (4) भारत के संविधान के दायरे से बाहर है?

निर्णय

न्यायालय ने कहा कि कोई भी सांसद, विधायक या विधान परिषद सदस्य जिसे किसी अपराध के लिए दोषी करार दिया जाता है और जिसे कम से कम दो साल का कारावास दिया जाता है, वह तत्काल प्रभाव से सदन की सदस्यता खो देता है।

न्यायालय ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8(4) को पूर्वेक्षित तौर (Prospective effect) पर निर्णय की तारीख से खारिज कर दिया गया और संविधान के दायरे से बाहर घोषित किया गया ।

भारत का संविधान अनेक प्रकार के विषय क्षेत्र प्रदान करता है जिसमें संसद और राज्य विधानमंडल ही कानून बना सकते हैं। भारत के संविधान का अनुच्छेद 102(1)(ई) और 191(1)(ई) संसद को, संसद और राज्य विधानमंडलों के 'अभी निर्वाचित होने वाले' (to be elected) और 'वर्तमान' सदस्यों की अयोग्यता के संबंध में कानून बनाने का अधिकार देता है।

- न्यायालय ने कहा कि संसद कानून द्वारा उन स्थितियों के लिए प्रावधान बनाने में सक्षम है, जहां कोई सांसद या विधायक संसद की सदस्यता से अयोग्य हो जाता है।

- संविधान संसद को ऐसा कानून बनाने से रोकता है जो सदस्यों की अयोग्यता को रोकता है और ऐसे अयोग्य सदस्य को विधायक के रूप में बने रहने की अनुमति देता है।

- संविधान में प्रावधान है कि एक बार जब कोई सदस्य अयोग्य हो जाता है तो ऐसे सदस्य की सीट उसके बाद खाली हो जाएगी। एक बार दोषी ठहराए जाने के कारण सांसद या विधायक उस सदन का सदस्य नहीं रह जाता है।

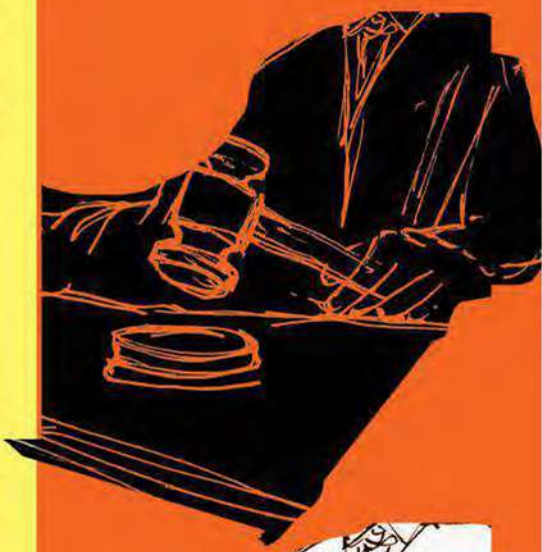

- धारा 8(4) ने ऐसे सांसद या विधायक को संसद भवन में बने रहने की अनुमति दी जिसके कारण न्यायालय ने इस धारा को "संविधान द्वारा संसद को दी हुई शक्तियों से परे" ठहराया।

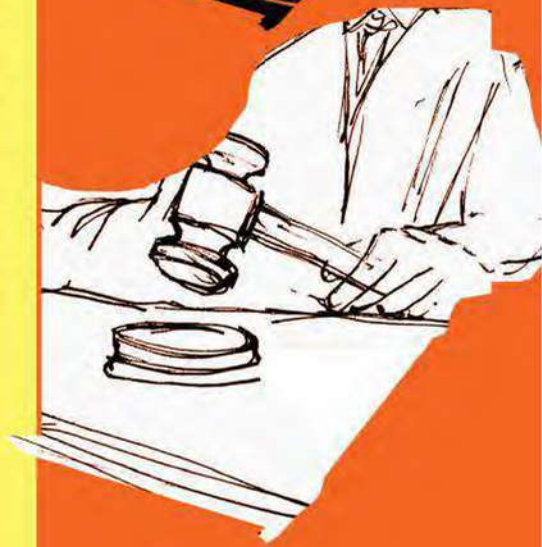

महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम भारतीय होटल और रेस्टोरेंट संघ

मनु/एस सी/0702/2013

तथ्य

तत्काल मामला, महाराष्ट्र सरकार द्वारा बार में नृत्य प्रदर्शन पर पूरे राज्य में प्रतिबंध से संबंधित उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया। यह प्रतिबंध बहुत चयनात्मक तरीक़े से कुछ ही जगह लगाया गया था ।

बॉम्बे पुलिस अधिनियम 1951 की धारा 33(ए) के तहत 'ईटिंग हाउस, परमिट रूम या बीयर बार' में किसी भी प्रकार के नृत्य पर प्रतिबंध लगा दिया था, जबकि धारा 33(बी) ने 'तीन सितारा' और उसके ऊपर के होटलों और अन्य समाज के उत्कृष्ट भाग के मनोरंजन के लिए नृत्य प्रदर्शन की अनुमति दी।

राज्य ने इस प्रतिबंध को यह कहते हुए उचित ठहराया कि बार नृत्य नैतिकता को भ्रष्ट करता है और महिला बार नर्तकियों के शोषण का कारण बनता है। प्रतिबंध के कारण 75,000 महिला कर्मचारी बेरोजगार हो गईं।

कानूनी प्रश्न

क्या महाराष्ट्र में बार में नृत्य प्रदर्शन पर प्रतिबंध असंवैधानिक है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का उल्लंघन है?

निर्णय

न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि प्रतिबंध असंवैधानिक था और बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले को यह कहते हुए बरकरार रखा कि नृत्य पर प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(जी) के तहत किसी के पेशे/व्यवसाय करने के अधिकार का उल्लंघन करता है। कुछ प्रतिष्ठानों में नृत्य की अनुमति नहीं देना जबकि दूसरों में उनकी अनुमति देना मनमाना (Arbitrary) था। यह भेदभाव अनुच्छेद 14 के तहत समानता के अधिकार का उल्लंघन करता है।

न्यायालय ने आगे कहा कि,

“हमारा न्यायिक विवेक हमें यह मानने की अनुमति नहीं देगा कि जिस वर्ग से कोई व्यक्ति या श्रोता आता है वह अपने साथ एक विशेष प्रकार की नैतिकता या शालीनता लाता है। हम उस धारणा को स्वीकार करने में असमर्थ हैं जो धारा 33(ए) और 33(बी) के माध्यम से चल रही है जिसके अन्तर्गत सरकार मानती है कि एक ओर जो मनोरंजन उच्च वर्गों के लोगों के लिए केवल आनंद का माध्यम है वहीँ दूसरी ओर वही मनोरंजन गरीब वर्गों के मामले में अनैतिकता, पतन और भ्रष्टता को जन्म देता है।”

न्यायालय ने इस बात पर प्रकाश डाला कि इन प्रतिबंधों को उचित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इससे नरम कई विकल्प उपलब्ध हो सकते हैं जो महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होंगे। न्यायालय ने प्रतिबंध की आलोचना की और कहा कि वास्तव में इसके परिणामस्वरूप कई महिलाओं को मजबूरन वेश्यावृत्ति में प्रवेश करना पड़ा।

इस मामले में, न्यायालय ने तर्क दिया कि - उक्त मामले में उपचार बीमारी से भी बदतर था और आगे कहा कि बार में नाचने वालों की सुरक्षा के साथ-साथ काम करने की स्थितियों को सुनिश्चित करना ही उचित होगा। इसलिए इसका समाधान महिलाओं की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना नहीं होना चाहिए, बल्कि सशक्तिकरण पर ध्यान देना होना चाहिए।

“इससे 75,000 से अधिक महिला बेरोजगार हुई है। यह रिकॉर्ड में लाया गया है कि उनमें से कई अपने परिवार के पोषण की आवश्यकता के कारण वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर हुई हैं। हमारी राय में, विवादित कानून पूरी तरह से बेकार साबित हुआ है और इसे बनाए नहीं रखा जा सकता है क्योंकि यह अनुच्छेद 19(1)(जी) के दायरे से बाहर (Ultra-vires) है।”

पीपलस् यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य

मनु/एस सी/0987/2013

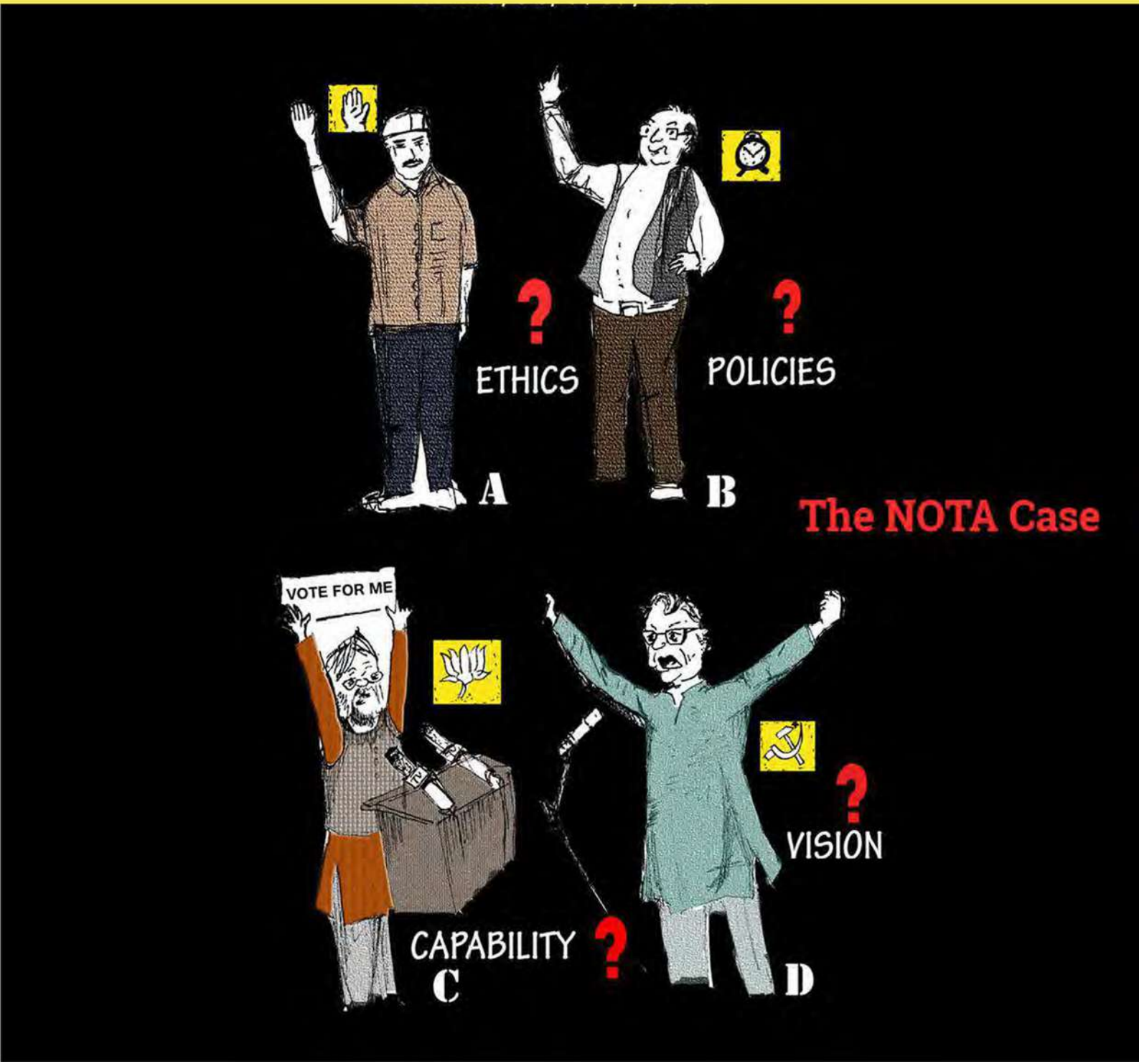

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने मतदाताओं को उन सभी उम्मीदवारों के खिलाफ नकारात्मक वोट डालने का अधिकार दिया, जिन्हें वे निर्वाचित होने के लिए अयोग्य मानते थे। इसका मतलब यह था कि मतदाता किसी भी पार्टी के सदस्य के बजाय इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन पर "उपरोक्त में से कोई नहीं" (नोटा) बटन का चयन कर सकता था।

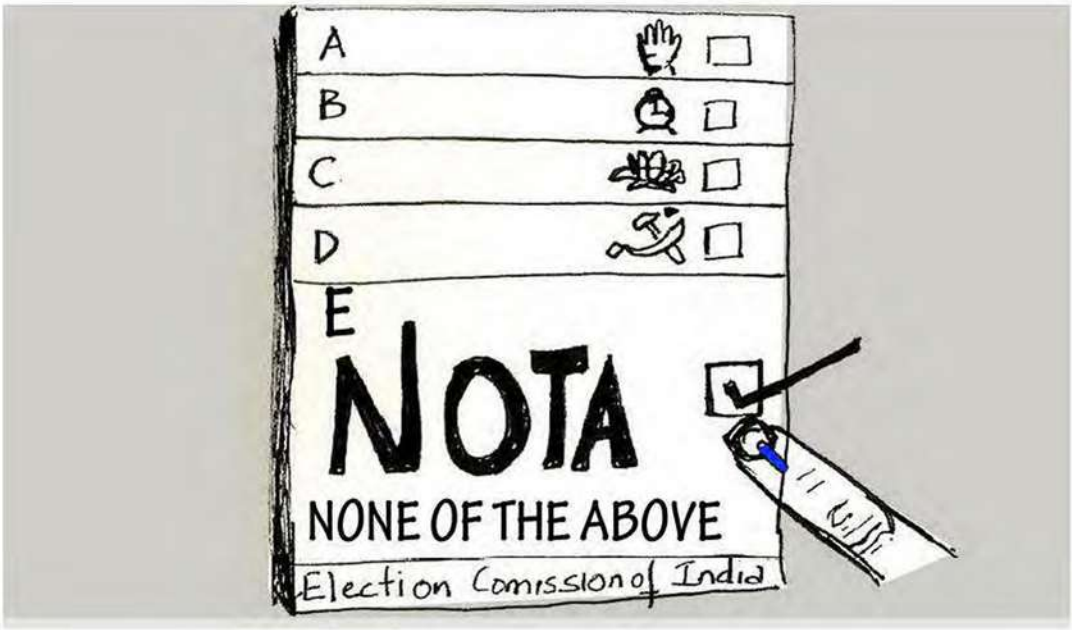

निर्णय

"...लोकतंत्र को जीवित रखने के लिए, यह आवश्यक है कि सबसे अच्छे लोगों को प्रतिनिधि के रूप में चुना जाए ताकि देश का शासन उचित प्रकार से किया जा सके।"

"...लोकतंत्र पूरी तरह से चुनाव पर आधारित है। मतदाताओं को बिना पाबन्दी अपनी बात कहने का मौका देकर इस विकल्प को बेहतर ढंग से व्यक्त किया जा सकता है"

"..किसी मतदाता को गोपनीयता के अधिकार की रक्षा करते हुए 'वोट न देने' का अधिकार देना लोकतंत्र में बेहद महत्वपूर्ण है। ऐसा विकल्प मतदाता को राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए जा रहे उम्मीदवारों के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करने का अधिकार देता है।"

"राजनीतिक दलों को एहसास होगा कि बड़ी संख्या में लोग अपनी अस्वीकृति व्यक्त कर रहे हैं ..... मजबूरन: लोगों की इच्छा को स्वीकार करते हुए वे ऐसे उम्मीदवारों को मैदान में उतारेंगे जो अपनी ईमानदारी के लिए जाने जाते हैं ।"

अभय सिंह
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

मनु/एस सी/1256/2013

वर्तमान मामला

क्या लोक सेवकों या सार्वजनिक पद धारण करने वाले अधिकारीयों द्वारा लाल बत्ती या काफिले का उपयोग हमारे संविधान के लोकाचार के विरुद्ध है?

क्या लाल बत्ती शक्ति और असमानता का प्रतीक है?

जो लोग लाल बत्ती वाले वाहनों का उपयोग करते है उनमे से बड़ी संख्या में लोग देश के कानूनों का सम्मान नहीं करते हैं और वे आम नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं।

“सरकार के विभिन्न विभागों में हमारे लोक सेवकों को अपनी भूमिका शासकों के रूप नहीं बल्कि लोगों के सच्चे सेवक बनकर होगी जिस तरह बाकी स्वतन्त्र देशों में पाया गया है।”

- डॉ. राजेंद्र प्रसाद,
15.08.1947 को संविधान सभा को संबोधित करते हुए,

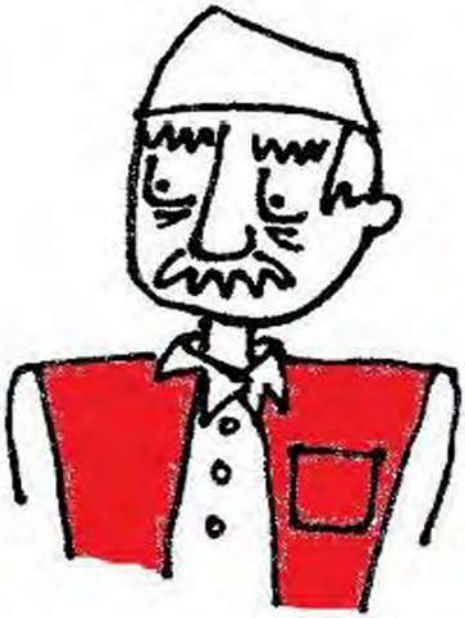

निर्णय

इस फैसले में लाल बत्ती के ऐसे उपयोग को प्रतिबंधित किया गया जहाँ अन्य नागरिकों की गरिमा के साथ समझौता किया जाता हो। लाल बत्ती का उपयोग किसी अन्य व्यक्ति पर शक्ति या श्रेष्ठता का दावा करने के उद्देश्य से नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि केवल कर्तव्य पूर्ण कार्य करते हुए ही लाल बत्ती का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

इसके अलावा, न्यायालय ने घोषणा की कि जिन एजेंसियों को सड़क पर बिना किसी बाधा के जाने की आवश्यकता होती है जैसे एम्बुलेंस सेवाएं, अग्निशमन सेवाएं, आपातकालीन रखरखाव सेवाएं, पुलिस वाहन इत्यादि उन्हें अन्य सरकारी वाहनों से अलग करने के लिए अलग बत्ती का उपयोग करने का अधिकार दिया जाएगा। ऐसा इसलिए किया जाएगा ताकि उन नागरिकों के लिए सेवा सुनिश्चित की जा सके जिन्हें इसकी सख्त जरूरत है।

शत्रुगन चौहान एवं अन्य
बनाम
भारत संघ

मनु/एस सी/0043/2014
2014/INSC/46

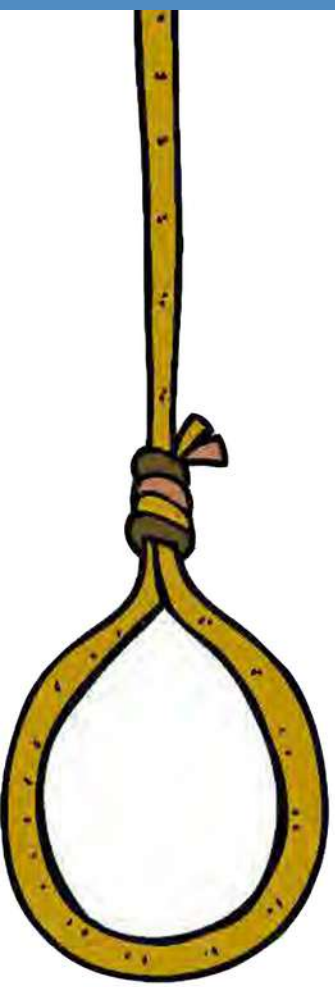

तथ्य

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ये रिट याचिकाएं उन लोगों द्वारा दायर की गई थीं जिन्हें दोषी ठहराया गया था और मौत की सजा सुनाई गई थी तथा भारत के राज्यपाल और राष्ट्रपति द्वारा उनकी दया याचिकाओं को खारिज किया गया था।

कानूनी प्रश्न

क्या भारत के राष्ट्रपति द्वारा दया याचिकाओं को अस्वीकार करने के बाद मौत की सजा का पालन करना असंवैधानिक है और क्या ऐसी मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदला जा सकता है?

निर्णय

न्यायालय ने दया याचिका पर कार्रवाई करने की प्रक्रिया से चर्चा शुरू की। यह प्रक्रिया इस तरह चलती है : सबसे पहले सर्वोच्च न्यायालय मौत की सजा की पुष्टि करता है। एक बार न्यायिक प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद इसके विरुद्ध कार्यपालिका कार्रवाई (Executive Action) की जाती है। जिसके बाद दोषी व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत राज्यपाल को दया याचिका भेज सकता है। यदि राज्यपाल इसे अस्वीकार कर देते हैं, तो संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत राष्ट्रपति को एक और याचिका प्रस्तुत की जा सकती है।

न्यायालय ने उन परिस्थितियों की विस्तार से जांच की जिनके तहत मौत की सजा को कारावास में परिवर्तित किया जा सकता है। ये थे -

- विलम्ब या देरी (Delay);
- पागलपन (Insanity);
- एकांत कारावास (Solitary Confinement);
- 'पर-इन्कुरियम' (Per Incuriam) यानि कानून या तथ्यों के प्रति उचित ध्यान नहीं देकर दिए गए निर्णय;
- प्रक्रियात्मक खामियां (Procedural Lapses)इत्यादि।

विलम्ब या देरी

न्यायालय ने कहा कि दया याचिका पर निर्णय लेने में सरकार की ओर से देरी के आधार पर एक दोषी कैदी की मौत की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जा सकता है। आगे कहा कि-
"राष्ट्रपति द्वारा दोषी को उसकी दया याचिका पर विचार करते हुए कई वर्षों तक दुविधा में रखना निश्चित रूप से उसके लिए पीड़ाजनक है। यह मौत की सजा के तहत दोषी पर शारीरिक और मानसिक तनाव पैदा करता है। यह न्यायालय यदि राष्ट्रपति द्वारा दया याचिका की अस्वीकृति पर विचार करे जो कि संविधान के अनुच्छेद 21 के साथ अनुच्छेद 32 को साथ पढ़ने के अंतर्गत आता है, तो भी न्यायालय यह समझेगी कि इतना दोषी को इतना लम्बा देर करना केवल अपराध की गंभीरता के आधार पर सही नहीं माना जाएगा।

पागलपन (Insanity)

वर्तमान मामले में, दो दोषी कैदियों ने इस आधार पर मौत की सजा को आजीवन कारावास की सजा में बदलने का अनुरोध किया कि दया याचिका पर निर्णय लेने में अनुचित रूप से लंबी देरी के कारण उन्हें दीर्घकालिक मानसिक बीमारी (Chronic Psychotic Illness) हो गई। इसे देखते हुए मौत की सजा अमानवीय कही जाएगी और मौत की सजा देना मानवाधिकारों खिलाफ होगा। न्यायालय ने कहा कि, पागलपन न्यायालय द्वारा विचार किए गए सही कारकों में से एक है।

एकांत कारावास (Solitary Confinement)

कुछ याचिकाकर्ताओं ने प्रस्तुत किया कि उन्हें मौत की सजा सुनाए जाने की तारीख से आज तक एकांत कारावास में रखा गया था। न्यायालय ने कहा कि यह असंवैधानिक है और जेलों में इसकी अनुमति नहीं दी जाएगी।

‘‘पर-इन्कुरियम’ के अनुसार घोषित किए गए निर्णय

‘पर-इन्कुरियम’(per incuriam) यानि कानून या तथ्यों के प्रति उचित ध्यान नहीं देकर दिए गए निर्णय के तर्क पर विचार करके न्यायालय ने कहा कि उन्होनें पिछले निर्णयों की समीक्षा करके कोई भी निर्णय को गलत नहीं पाया।

प्रक्रियात्मक खामियां

याचिकाकर्ताओं का दावा था कि इन मामलों में दया याचिकाओं के निपटारे के लिए निर्धारित प्रक्रिया का विधिवत पालन नहीं किया गया और इस चूक के कारण आरोपियों और उनके परिवार के साथ गंभीर अन्याय हुआ है। इस तर्क पर न्यायालय ने कहा कि मौत के दोषियों के साथ भी संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार निष्पक्ष व्यवहार किया जाना चाहिए।

“यह पूर्णतः स्थापित है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 72 या 161 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग केवल एक विशेषाधिकार नहीं बल्कि एक संवैधानिक दायित्व भी है। पद की उच्च स्थिति को ध्यान में रखते हुए, संविधान निर्माताओं ने इन अनुच्छेदों के तहत दया याचिकाओं के निपटारे के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की, जिसका अर्थ है कि इस पर उचित समय के भीतर निर्णय लेना अनिवार्य है। हालाँकि जब दया याचिकाओं के निपटारे में हुई देरी अनुचित, अस्पष्ट और अत्यधिक है, तो इस न्यायालय का कर्तव्य है कि वह इस पहलू पर विचार करे। दोषी को दया मांगने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 72 या 161 के तहत एक संवैधानिक अधिकार है जो कि कार्यपालिका के विवेक या भावनाओं पर आधारित नहीं है। प्रत्येक संवैधानिक कर्तव्य को उचित सावधानी और लगन के साथ पूरा किया जाना चाहिए, अन्यथा संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए संविधान के तहत न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ सकती है।”

इस मामले में दया याचिका के निवारण में देरी के कारण 15 दोषियों की मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया गया था।

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ और अन्य

मनु/एस सी/0309/2014
2014/INSC/275

तीसरा लिंग कौन है?

ट्रांसजेंडर एक व्यापक (Umbrella term) शब्द है जिसका उपयोग उन व्यक्तियों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिनकी लिंग पहचान, लिंग अभिव्यक्ति या व्यवहार उनके जन्मजात लिंग के अनुरूप नहीं है। भारत में समर्थन देने वाले लोग और समूह उन्हें 'थर्ड जेंडर' के रूप में पहचानते हैं।

इस लिंग की कानूनी मान्यता क्यों महत्वपूर्ण है?

कानूनी क्षेत्र में लिंग एक महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि यह विवाह, गोद लेने, विरासत, उत्तराधिकार, कराधान (Taxation) और कल्याण के संबंध में अधिकारों को निर्धारित करता है। भारत में पहले से मौजूद कानून केवल पुरुष और महिला, केवल दो लिंगों को मान्यता देता था। ट्रांसजेंडर लोगों के अधिकारों की रक्षा करने वाले कानून की कमी के कारण, इस समुदाय को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भेदभाव का सामना करना पड़ा।

अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समानता : भारत की सीमा में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता से या विधियों के द्वारा दिये गये समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा ।

अनुच्छेद 14 में प्रयोग शब्द 'किसी भी व्यक्ति' के अंतर्गत समानता का अधिकार पुरुष, महिला और ट्रांसजेंडर लोगों के लिए संविधान द्वारा समान रूप से दिया गया है। इसलिए, ट्रांसजेंडर लोग रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और नागरिक अधिकारों सहित सभी क्षेत्रों में समान कानूनी संरक्षण के हकदार हैं। यौन रुझान (Sexual Orientation) और लिंग की पहचान के आधार पर किया गया भेदभाव, कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण (Equal Protection of Law) को बाधित करता है।

अनुच्छेद 15 - जाति, धर्म, लिंग, जन्म स्थान और वंश के आधार पर भेदभाव पर प्रतिषेध ; अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन में अवसर की समता

अनुच्छेद 15 और 16 में 'लिंग' शब्द का उपयोग किया हुआ है इसका अर्थ यह है कि राज्य द्वारा किसी भी प्रकार के लिंग के प्रति पूर्वाग्रह (bias) और लिंग आधारित भेदभाव पर प्रतिबन्ध है, जिसमें ट्रांसजेंडर लोगों के खिलाफ भेदभाव भी शामिल है।

अनुच्छेद 19(1)(ए) - सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार

किसी भी व्यक्ति के लिंग की पहचान उसकी व्यक्तिगत पहचान के मूल में निहित है, उसी तरह से खुद के लिंग की पहचान शब्दों, पोशाक, कार्य या व्यवहार के माध्यम से अभिव्यक्त करना भी भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में निहित है।

अनुच्छेद 21 - प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण- किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी और प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

अपनी लैंगिक पहचान चुनने का अधिकार गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार का अभिन्न अंग है और इसलिए यह प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के दायरे में आता है।

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि- " यौन रुझान (Sexual Orientation) या लिंग की पहचान के आधार पर भेदभावों में कोई भी बहिष्कार, प्रतिबंध या किसी लिंग को प्राथमिकता शामिल है। जो भेदभाव किसी भी तरह कानून द्वारा निहित समानता (अनुच्छेद 14) को रद्द करने या समानता के अधिकार में बदलाव करने या संविधान के तहत संरक्षण को कम करता है, ऐसे भेदभाव को अवैध माना जायेगा" ।

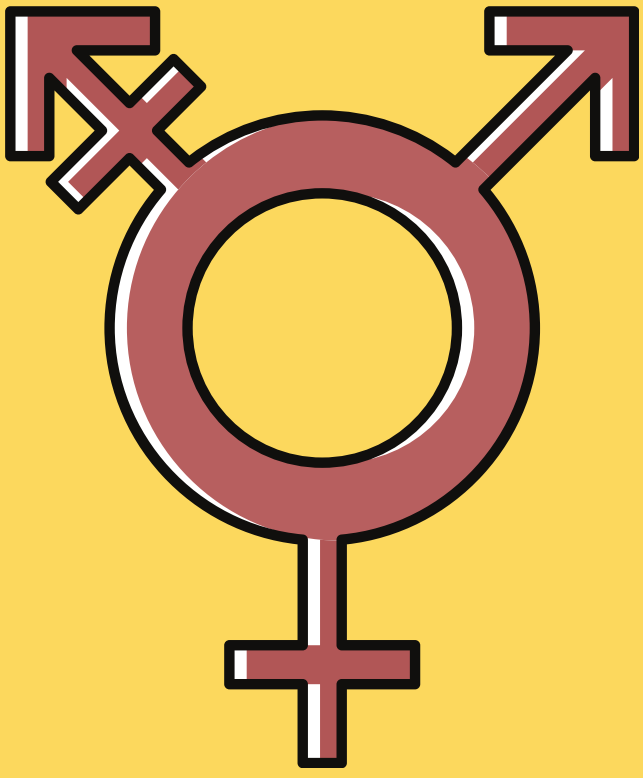

manupatra®

JUSTICE adda

कॉमन कॉज बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0604/2015
2015/INSC/404

'राजनीति से प्रेरित अभियानों के विज्ञापनों में जनता के पैसो के उपयोग के खिलाफ'

तथ्य

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत जनहित याचिकाएं दायर की गई थीं, जिसमें केंद्र और राज्य सरकारों को अपने राजनीतिक अभियानों के विज्ञापनों में जनता के पैसो का उपयोग करने से रोकने की मांग की गई थी।

इस केस में यह दावा किया गया कि सार्वजनिक प्राधिकरणों (Public Authorities) द्वारा विज्ञापन में जनता के पैसों का उपयोग किसी व्यक्ति विशेष या दल विशेष के राजनैतिक फायदे के लिए करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

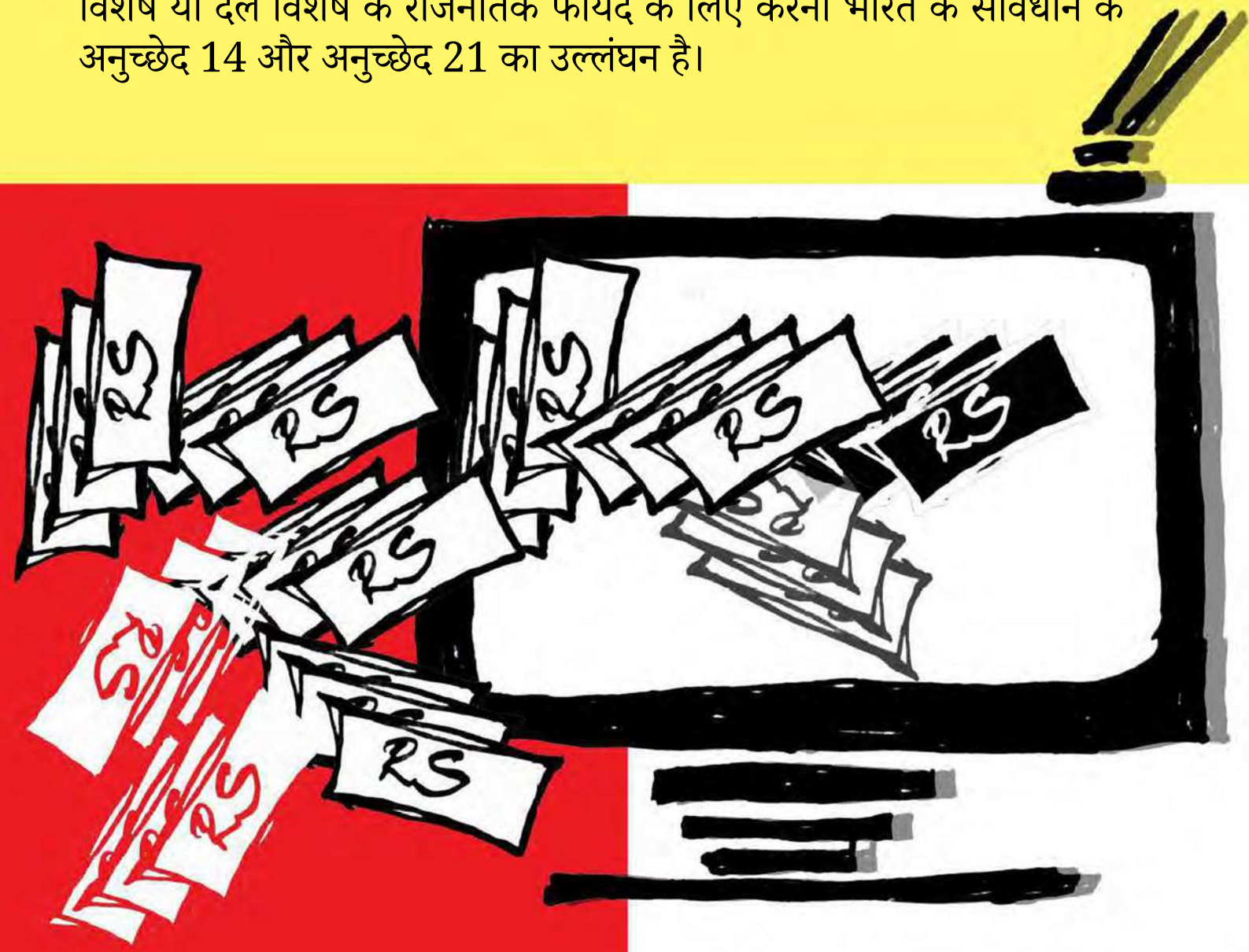

याचिकाकर्ता ने सरकारों द्वारा जनता के पैसो के दुरुपयोग के साथ-साथ ऐसी गतिविधियां रोकने के लिए विशिष्ट निर्देश देने के लिए परमादेश रिट (Writ of Mandamus) की मांग की।

निर्णय

सरकारी विज्ञापनों के कंटेंट का नियंत्रण करने के लिए कोई नीति नहीं है और विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय (Directorate of Advertising and Visual Publicity, डी. ए. वी. पी.) द्वारा जारी दिशा-निर्देश सार्वजनिक धन के दुरुपयोग को रोकने के लिए किसी भी प्रकार के विषय और मुद्दे में शामिल नहीं करते हैं। न्यायालय ने कहा कि जब भी सरकार अनुचित और जनहित के विपरीत कार्य करती है, तो न्यायालय को ऐसी परिस्थिति में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।

सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि विज्ञापन सरकारों के लिए उपलब्ध एक बहुत ही उपयोगी माध्यम है। लेकिन इसका दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए। जिस क्षण इसका उपयोग जनता को महत्वपूर्ण जानकारी देने के बजाय राजनीतिक लाभ के लिए किया जाता है, विज्ञापनों का पूरा उद्देश्य खत्म हो जाता है।

कानून की अनुपस्थिति

न्यायालय ने लोक कल्याण में विज्ञापन अभियानों को सुनिश्चित करने के लिए नियम बनाने के उद्देश्य से एक समिति का गठन किया।

विज्ञापनों की सामग्री का नियंत्रण करने के लिए 5 सिद्धांत

- विज्ञापन अभियान सरकारी जिम्मेदारियों से संबंधित होने चाहिए।
- विज्ञापन सामग्री को उद्देश्यपूर्ण, निष्पक्ष और सुलभ तरीके से प्रस्तुत किया जाना चाहिए और अभियान के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए डिज़ाइन किया जाना चाहिए।
- किसी पार्टी के राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने के लिए नहीं होने चाहिए।
- अभियानों को उचित, कुशल और कम लागत से चलाया जाना चाहिए।
- विज्ञापनों को कानूनी आवश्यकताओं, नियमों और प्रक्रियाओं का पालन करना चाहिए।

श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/0329/2015
2015/INSC/257

तथ्य

इस केस में मुंबई पुलिस ने दो महिलाओं को गिरफ्तार किया था क्योंकि उन्होंने एक राजनेता की मृत्यु के बाद मुंबई शहर को बंद करने के संबंध में फेसबुक पर पुलिस के अनुसार आपत्तिजनक टिप्पणी पोस्ट करी थी । इनकी गिरफ्तारी, सूचना तकनीक अधिनियम 2000 (आई. टी. ए.) की धारा 66A के तहत की गई थी। इस धारा के अंतर्गत उन व्यक्तियों को दंडित करने का प्रावधान है, जो कंप्यूटर संसाधन या संचार उपकरण के माध्यम से कोई भी ऐसी जानकारी भेजते हैं जो आपत्तिजनक या झूठी है। जानकारी का उद्देश्य अपमान, चोट, घृणा या दुर्भावना, असुविधा तथा खतरा पैदा करना है।

इन महिलाओं ने एक याचिका दायर की, जिसमें धारा 66A की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह धारा अनुच्छेद 19 के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन करती है ।

कानूनी प्रश्न

क्या सूचना तकनीक अधिनियम, 2000 की धारा 66(ए) भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन करती है और इसलिए असंवैधानिक है?

निर्णय

न्यायालय ने माना कि धारा 66(ए) एक नागरिक के बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को कम करती है। न्यायालय ने अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत मौलिक अधिकार को समझने के लिए आवश्यक तीन अवधारणाओं पर चर्चा की।

“तीन अवधारणाएँ हैं जो इस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मानवाधिकारों की बुनियाद को समझने में मौलिक हैं। पहली चर्चा (Discussion), दूसरी वकालत(Advocacy), और तीसरी अवधारणा उत्तेजना या उकसाना (Incitement) है। जब तक केवल चर्चा या किसी विशेष कारण की वकालत करना हो तो यह अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत सही है, चाहे वह कितना भी अलोकप्रिय क्यों न हो। लेकिन जब इस तरह की चर्चा या वकालत किसी प्रकार के उकसावे के स्तर तक पहुंचती है तब अनुच्छेद 19(2) लागू होता है। जो भाषण सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण बनता है या जिससे भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ संबंधों आदि को खतरा पहुँचता है, उस भाषण या अभिव्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए एक कानून बनाया जा सकता है।”

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि धारा 66(ए) से जनता का जानने का अधिकार प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है।

धारा 66(ए) का मुद्दा अनुच्छेद 19(2) में शामिल आठ विषयों में से किसी भी दायरे में नहीं आता है। अनुच्छेद 19(2) अनुच्छेद 19(1) द्वारा दिए गए अधिकार पर उचित प्रतिबंधों के बारे में बात करता है। इन उचित प्रतिबंधों में असुविधा, खतरा, बाधा, अपमान, चोट, आपराधिक धमकी, शत्रुता, घृणा या बैर-भाव इत्यादि शामिल हैं।

न्यायालय ने इस बात पर चर्चा की कि कैसे विवादित कानून का भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(2) में सूचीबद्ध निम्नलिखित चार विषयों के साथ निकट संबंध नहीं था।

1) सार्वजनिक व्यवस्था (Public Order)

न्यायालय ने निर्धारित किया कि धारा 66ए का सार्वजनिक व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं है क्योकि इस अपराध में 'उकसावे' का कोई तत्व नहीं था और यह सार्वजनिक सुरक्षा या शांति के लिए खतरा नहीं था। इन बातों को समझाते हुए न्यायालय ने सार्वजनिक व्यवस्था के आधार पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबन्द लगाना अनुचित समझा।

2) मानहानि (Defamation)

न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया कि धारा 66ए प्रतिष्ठा या प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाने से संबंधित नहीं है, जो मानहानि के लिए एक मूल घटक है। यह स्पष्ट करते हुए कि इस धारा का उद्देश्य केवल मानहानिकारक बयानों को रोकना नहीं है।

3) अपराध के लिए उकसाना (Incitement)

न्यायालय ने निर्धारित किया कि धारा 66ए का अपराध करने के लिए उकसाने से कोई संबंध नहीं है।

4) शालीनता और नैतिकता(Decency or Morality)

धारा 66ए किसी भी तरह से शालीनता या नैतिकता के खिलाफ नहीं जाती है

धारा 66ए को इसकी अस्पष्टता (Vagueness) के कारण भी असंवैधानिक करार देते हुए निरस्त कर दिया गया था। इसमें कहा गया "इस धारा में उपयोग किया गया प्रत्येक शब्द अस्पष्ट है।

जो एक के लिए अपमानजनक हो सकता है वह दूसरे के लिए ज़रूरी नहीं कि उन्हें आहत करे । जो बात एक व्यक्ति को परेशान या असुविधा का कारण बन सकती है, वह दूसरे के लिए साधारण सी बात हो सकती है।

यहां तक कि शब्द 'लगातार' अभिव्यक्ति के अंदर भी पूरी तरह से अस्पष्ट है-मान लीजिए कि एक संदेश को तीन बार भेजा गया है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि इसे 'लगातार भेजा गया था' ? क्या हम यह माने किसी संदेश को 'लगातार' भेजा जाने के लिए क्या उसे कम से कम आठ बार भेजा जाना चाहिए?"

यह वाक्य 'ऐसी जानकारी जो घोर रूप से आपत्तिजनक हो सकती है या जो झुंझलाहट या असुविधा का कारण बनती है' बहुत सारे अस्पष्ट शब्दों का वर्णन हैं जिसमें इंटरनेट में प्रयोग में बड़ी मात्रा में संरक्षित और निर्दोष भाषण भी आ सकते हैं। एक व्यक्ति इंटरनेट पर प्रसारित लेखन के माध्यम से किसी भी विषय पर चर्चा या वकालत कर सकता है जो सरकारी, साहित्यिक, वैज्ञानिक या अन्य मामलों से संबंधित एक दृष्टिकोण या दृष्टिकोण हो सकता है, जो समाज के कुछ वर्गों के लिए अप्रिय हो सकता है।

यह स्पष्ट है कि किसी भी मामले पर एक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति झुंझलाहट, असुविधा का कारण बन सकती है या कुछ लोगों के लिए अत्यधिक आक्रामक हो सकती है। यही कुछ उदाहरण इसकी अस्पष्टता दर्शाने के लिये पर्याप्त होंगे। किसी विशेष समुदाय का एक निश्चित वर्ग इंटरनेट पर 'उदारवादी विचार' के संचार से अत्यधिक प्रभावित या नाराज हो सकता है।

वास्तव में धारा 66ए का मसौदा इतना व्यापक रूप से तैयार किया गया है कि वस्तुतः किसी भी विषय पर किसी भी राय को इसके दायरे में लाया जाएगा, क्योंकि उस समय की रूढ़ियों से असहमत होने वाली कोई भी गंभीर राय इसके दायरे में आ जाएगी।
इंटरनेट के माध्यम से प्रसारित जानकारी के साथ अलग तरीके से व्यवहार किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के लिए धारा 66ए को चुनौती स्वीकार नहीं की जा सकती है।

सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड बनाम भारत संघ

मनु/एस सी/1183/2015
2015/INSC/787

तथ्य

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक (National Judicial Appointments Commission Bill- एन. जे. ए. सी.) और राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की स्थापना करने वाला 121वां संवैधानिक संशोधन विधेयक, अगस्त 2014 में लोकसभा में पेश किया गया था। संसद के दोनों सदनों ने विधेयक को पेश किए जाने के 3 दिनों के भीतर इसे पारित कर दिया । जनवरी 2015 में जब राष्ट्रपति ने विधेयक को अपनी सहमति दी, तो यह एक कानून बन गया। एन. जे. ए. सी. का उद्देश्य उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति करने की दो दशक पुरानी कॉलेजियम प्रणाली को प्रतिस्थापित (Replace) करना था। इसके बाद इस अधिनियम को सर्वोच्च न्यायालयमें चुनौती दी गई ।

*राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग भारत में बनने वाला एक प्रस्तावित निकाय (Proposed Body) था जिसकी जिम्मेदारी भारत में उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों के चुनाव और स्थानांतरण की होती। इस निकाय में भारत के मुख्य न्यायाधीश, दो सबसे वरिष्ठतम न्यायाधीश, केंद्रीय कानून मंत्री और दो प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल थे। इन दोनों प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भारत के मुख्य न्यायाधीश, प्रधानमंत्री और लोकसभा में विपक्ष के नेता की एक समिति द्वारा चुना जाना था।

कानूनी प्रश्न

क्या राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक अधिनियम असंवैधानिक था?

निर्णय

वर्ष 2015 के आदेश में सर्वोच्च न्यायालय की एक संवैधानिक पीठ ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम को असंवैधानिक कह कर खारिज कर दिया । इसके लिए न्यायालय ने निम्नलिखित कारण दिए :

न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि इस अधिनियम में राष्ट्रपति की भूमिका पर स्पष्टता की कमी थी। नई प्रस्तावित प्रणाली राष्ट्रपति के निर्णय को दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों की राय के अधीन करती है, जिनमें से कोई भी संवैधानिक रूप से जवाबदेह नहीं है। इससे राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्ति (Discretionary Power) कम हो जाएगी। इस अधिनियम ने अनुच्छेद 124(2) का गंभीर असंवैधानिक उल्लंघन किया जो राष्ट्रपति को मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों से परामर्श करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति करने की शक्ति देता है।

न्यायालय ने भारत के मुख्य न्यायाधीश और न्यायपालिका की भूमिका पर यह कहा कि 99वें संशोधन अधिनियम ने भारत के मुख्य न्यायाधीश, जो न्यायपालिका के प्रमुख होते हैं उन्हें मात्र एन. जे. ए. सी. के छह सदस्यों में से केवल एक सदस्य की भूमिका तक सीमित कर दिय। इसने कहा कि इस तरह का प्रावधान 'उन्हें पारंपरिक, ऐतिहासिक और वैध संवैधानिक महत्व और अधिकार से वंचित कर देगा और संविधान सभा और संविधान द्वारा निर्धारित नियुक्ति प्रक्रिया को काफी हद तक बदल देगा।'

न्यायालय ने यह भी कहा कि इस संशोधन ने न्यायाधीशों की नियुक्ति की पूरी योजना को बाधित करके संविधान के आधारिक संरचना में बदलाव करने का भी प्रयास किया, जिसे संविधान सभा द्वारा अभिनिर्धारित (Postulated) किया गया था।

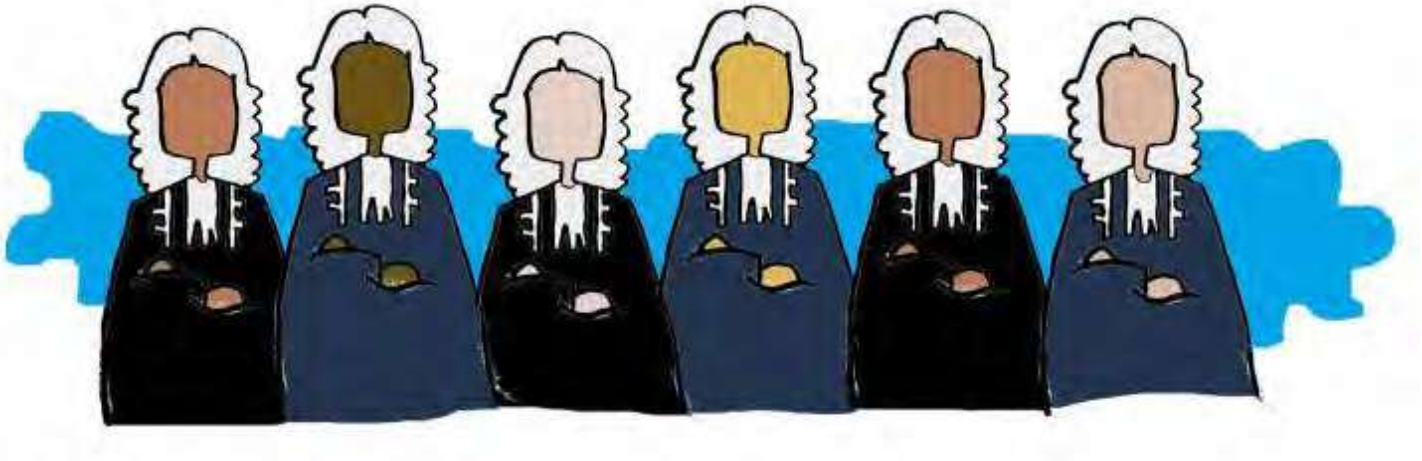

दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों की भूमिका और उन्हें दी हुई वीटो की शक्ति पर सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि-

न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ परामर्श करने पर कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन यह अकल्पनीय है कि ये प्रतिष्ठित व्यक्ति, भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा सर्वसम्मति (अन्य न्यायाधीशों और संभवतः अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के परामर्श से) से या अन्यथा लिए गए निर्णय को वीटो कर सकते हैं। यह अधिनियम, राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग में इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बिना किसी जवाबदेही (Accountability) के एक राजतंत्रीय(Monarchical) शक्ति प्रदान करता है।

कानून मंत्री की भूमिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि आयोग में कानून मंत्री को शामिल करना न्यायपालिका के स्वतंत्रता के विरुद्ध है जो हमेशा यही कोशिश करती आ रही है कार्यपालिका और न्यायपालिका अलग-अलग रहे।

न्यायधीशों की नियुक्ति में पारदर्शिता के सम्बन्ध में यह कहा कि-
“पारदर्शिता और गोपनीयता के बीच संतुलन बहुत नाजुक है और यदि किसी व्यक्ति के बारे में संवेदनशील जानकारी सार्वजनिक की जाती है, तो इसका उनकी प्रतिष्ठा और गरिमा पर दुर्गम प्रभाव पड़ सकता है। 99वें संविधान संशोधन अधिनियम और राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम ने गोपनीयता से जुड़ी चिंताओं पर ध्यान नहीं दिया है।”

अंत में, संशोधन को असंवैधानिक ठहराते हुए, न्यायालय ने कहा कि यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में अवरोध उत्पन्न करता है, जो न्यायपालिका की स्वतंत्रता का एक मूलभूत और अटूट हिस्सा था। इस फैसले के परिणामस्वरूप कॉलेजियम प्रणाली को पुनर्जीवित करके प्रयोग में फिर से लिया गया ।